सम्पत्ति का उपभोग

[द्रव्य के उपार्जन से उसका सदुपभोग अधिक महत्व-पूर्ण है]

(भारतवर्षीय हिन्दी अर्थशास्त्र-परिषद द्वारा
संपादित और स्वीकृत)

लेखक

दयाशंकर दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०
अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय

और

मुरलीधर जोशी, एम्० ए०
अर्थशास्त्र-अध्यापक, लखनऊ-विश्वविद्यालय

प्रकाशक

व्यवस्थापक, अर्थशास्त्र ग्रन्थावली
दारागंज, प्रयाग।

द्वितीय संस्करण] १९४१ [मूल्य १)

अपनी बात

अर्थशास्त्र-विषयक पुस्तकों के अध्ययन की आवश्यकता प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति को क्यों है यह प्रश्न यदि साधारणतया किसी ऐसे शिक्षित व्यक्ति से भी पूछ दिया जाय, जिसे अर्थशास्त्र विषयक पुस्तकों के अध्ययन का सुअवसर न मिला हो, तो वह यकायक अस्थिर हो उठेगा। वह बहुत सोच समझकर उत्तर देने का प्रयत्न करेगा। फिर भी अधिक स्वाभाविक यही है कि उसका उत्तर असन्तोष-जनक ही हो। बात यह है कि साधारण जन-समाज की यह धारणा सी बनी हुई है कि अर्थशास्त्र तो केवल कालेजों के विद्यार्थियों के अध्ययन की वस्तु है। और यह धारणा कितनी भ्रमात्मक है, ज़रा सोचिये तो सही! सच पूछिये तो अर्थशास्त्र विषय का अध्ययन प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जन-साधारण में अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रसार राष्ट्र की श्री वृद्धि का मुख्य साधन है। अर्थशास्त्र की दृष्टि का विस्तार समाज की आन्तरिक शक्ति है, उसकी उन्नति के लिए जागरण का बिगुल। परन्तु यह कितने खेद की बात है कि भारत की सर्वमान्य राष्ट्रभाषा हिन्दी का साहित्य अर्थशास्त्र विषयक पुस्तकों से अभी तक असम्पन्न बना हुआ है। चाहिये तो यह था कि इस विषय की पुस्तकें भारतवर्ष भर में, राजभवनों से लेकर झोपड़ियों तक, भरी पड़ी रहतीं—आवश्यकता तो इस बात की थी कि राष्ट्र के इस नव-निर्माण-काल में हमारे यहाँ के नागरिक और कृषक दोनों ही अर्थशास्त्र-विषयक ज्ञान से पूर्ण सम्पन्न होते, पर अवस्था यहाँ तक गिरी हुई है कि इस

विषय के ज्ञान का प्रकाश घर-घर में फैलना दूर रहा, हमारे देश के नागरिक तक इस में कोरे हैं! तब फिर देश की आर्थिक शक्ति क्यों न क्षीण रहे, देश की ग़रीबी और बेकारी क्यों न बढ़े और जन-साधारण के आर्थिक कष्टों का कोलाहल क्यों न अहर्निशि-गगन व्यापी बना रहे। अनाथ बच्चे और अपाहिज व्यक्ति दाने-दाने को तरस कर क्यों न मरें, भारत वसुन्धरा ख़ून के आँसुओं से क्यों न रोये!!

इस पुस्तक के लेखक प्रोफेसर प० दयाशकरजी दुबे (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय) ने वास्तव में अर्थशास्त्र-विषयक साहित्य के निर्माण का कार्य प्रचुर परिमाण और उत्कृष्ट रूप मे करके हिन्दी की बहुत बडी सेवा की है। पिछले बीस वर्षों में उन्होंने हिन्दी को कई पुस्तके दी हैं। भारत में कृषि सुधार, धन की उत्पत्ति, अर्थशास्त्र-शब्दावली, निर्वाचन पद्धति, ब्रिटिश-साम्राज्य शासन, सरल राजस्व, अकशास्त्र, विदेशी विनिमय आदि अनेक पुस्तकें तो उन्होंने लिखी हैं। अभी हाल में बड़े परिश्रम से 'अर्थशास्त्र की रूप रेखा' नामक एक वृहत्काय महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर उन्होंने हिन्दी का गौरव बढाया है। इनके सिवा अनेक पुस्तका का उन्होंने सम्पादन किया है। वृन्दावन से श्रीभगवानदासजी केला की अध्यक्षता में जो भारतीय ग्रन्थमाला निकलती है, उसकी अर्थशास्त्र-विषयक पुस्तकों का सम्पादन भी दुबेजी ने ही किया है। इनके सिवा प्रोत्साहन परामर्श और आर्थिक सहायता देकर उन्होंने बहुत-सी पुस्तकों के निर्माण, प्रचार और उद्धार का जो महत्व-पूर्ण कार्य किया है, उसकी तो बात ही निराली है। और इस कार्य को वे प्राय. सर्वांश में निस्वार्थ सेवा के रूप में ही नहीं कर रहे हैं; वरन् कभी-कभी तो आर्थिक हानि-उठाकर भी किया करते हैं। उनके अर्थशास्त्र-विषयक साहित्य के निर्माण का यह प्रत्यक्ष रूप हुआ। पर अप्रत्यक्ष रूप से भी वे हिन्दी की

बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। उन्होंने उत्साह दे-देकर हिन्दी को कई अर्थशास्त्री लेखक दिये हैं। इस पुस्तक के संयुक्त-लेखक श्रीमुरली-धरजी जोशी भी उन्हीं में से हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जोशीजी ने दुवेजी से इस विषय मे जो दीक्षा पाई है, उससे हिन्दी का हित ही होगा।

दुवे जी में झूठी यश लिप्सा तो छू भी नहीं गयी है। प्रायः देखा जाता है कि महामान्य लेखक लोग ऐसी पुस्तको के भी लेखक होने के अधिकारी हो जाते हैं, जिनका एक अक्षर भी उनका लिखा, डिक्टेट किया अथवा बतलाया नहीं होता। सच पूछिये तो इससे हिन्दी का बड़ा अहित हो रहा है। परिश्रमी और अधिकारी लेखक इन स्वनाम-धन्य लेखकों की महामाया में दबे पड़े रहते हैं और फिर कभी उचक नहीं पाते। परन्तु हमारे दुवेजी सहकारी लेखको को प्रोत्साहन ही नहीं देते; वरन् उनके साथ बैठकर काम करते और उन्हे उस विषय में पारगत बनाकर ही सन्तोष की सास लेते हैं। इस पुस्तक के लेखन में भी दुवेजी ने यथेष्ट श्रम किया है।

प्रयाग-विश्वविद्यालय में गत बारह वर्षों से बी० ए० (आनर्स) के अर्थशास्त्र विषय में परीक्षार्थी को एक प्रश्नपत्र हिन्दी या उर्दू में अवश्य ही लेने का जो प्रतिबन्ध है, उसके मूल में दुवेजी का ही प्रयत्न है। हिन्दी की उच्चकोटि की पत्रिकाओं में समय-समय पर दुवेजी लेख भी लिखते रहते हैं। एक वाक्य में, कहा जा सकता है कि हिन्द में अर्थशास्त्र विषय के साहित्य-निर्माण का कार्य ही दुवेजी के जीवन का मुख्य ध्येय है। और इसीलिए उन्होंने अपना अधिकाश समय इसी उद्देश्य की पूर्ति के अर्थ उत्सर्ग कर रक्खा है। इस प्रकार सचमुच दुवेजी का जीवन धन्य है।

न तो मैं अर्थशास्त्री ही हूँ, न इस विषय का अनन्य अनुरागी ही। फिर भी दुवेजी के निकट बैठने और साथ ही उनकी छत्रछाया में कुछ साहित्यिक कार्य करने का सौभाग्य मुझे भी समय-समय पर प्राप्त होता रहता है। दुवेजी की प्रेरणा से मैंने इस पुस्तक की प्रेस कापी देखी, तो मुझे हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिए बहुत लाभकर प्रतीत हुई। अतएव मैंने इस पुस्तक के प्रथम सस्करण को प्रकाशित कर दिया और वह दो तीन वर्षों में ही समाप्त हो गया। इस बीच में मैने पुस्तक प्रकाशन कार्य बन्द कर दिया, इसलिए इस पुस्तक का दूसरा सस्करण अभी तक मै न निकाल सका। मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि इसका दूसरा सस्करण अब प्रकाशित हो रहा है।

सच पूछिये तो ऐसी पुस्तकों को हिन्दी भाषा-भाषी जनता के घर-घर में पहुँचना चाहिये। इससे उनके ज्ञान की वृद्धि तो होगी ही, जीवनयापन के अपने दृष्टिकोण को भी वे यथेष्ठ व्यापक और परिष्कृत बना सकेंगे। और राष्ट्रीय जागरण के लिए आज हमे इसी बात की आवश्यकता सबसे अधिक है। अस्तु, हमें पूर्ण आशा है कि पाठक इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

दारागज, प्रयाग
श्रावणी पूर्णिमा
सवत् १९९८ वि०

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

भूमिक
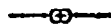
द्रव्य का सदुपयोग उतना सरल नहीं है जितना द्रव्य का प्राप्त करना। जब हम अपने और अपने आसपास के व्यक्तियों के खर्च के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तब हमको उक्त कथन की सत्यता का पता लगता है। द्रव्य से मनुष्य को जो शक्ति प्राप्त होती है उसका वह इच्छानुसार सदुपयोग या दुरुपयोग कर सकता है। उस शक्ति का सदुपयोग करने से वह अपने आप तथा अपने देश और समाज को बहुत लाभ पहुँचा सकता है। परन्तु उसी शक्ति का दुरुपयोग करने से मनुष्य कभी-कभी स्वयं अपने और समाज को भयंकर हानि पहुँचा देता है। संसार भर में व खासकर भारत में प्रति वर्ष असंख्य मनुष्य द्रव्य का दुरुपयोग कर जुआ, मुकदमेबाजी, विलासिता तथा मादक-वस्तुओ के सेवन द्वारा अपने आपको बरबाद कर रहे हैं और देश को भारी हानि पहुँचा रहे हैं। इस बरबादी का एक प्रधान कारण द्रव्य के उपभोग-सम्बन्धी उचित ज्ञान का अभाव है। हिन्दी में इस विषय की पुस्तकों की बहुत कमी है। इसी कमी को कुछ अंश में दूर करने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक से इन्टरमीडिएट बी० काम० और बी०ए० के विद्यार्थियों तथा हिन्दी-विश्वविद्यालय के मध्यमा परीक्षा के परीक्षार्थियो को इस विषय के समझने मे सहायता मिलेगी।

यह पुस्तक मैंने और श्रीयुत मुरलीधरजी जोशी ने मिलकर लिखी है। जो भाग श्रीयुत जोशीजी ने लिखा है वह मेरे निरीक्षण

मे ही लिखा है। इसलिये इस पुस्तक के दोषो के लिये पूर्णरूप से मैं ही जिम्मेदार हूँ। यदि हिन्दी प्रेमी सज्जन इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उचित सलाह देने की कृपा करेगे तो मै उनका बहुत कृतज्ञ होऊँगा।

गत बारह वर्षों से प्रयाग विश्वविद्यालय मे एम० ए० (प्रथम वर्ष) के अर्थशास्त्र विषय के प्रत्येक परीक्षार्थी को एक प्रश्नपत्र का उत्तर हिन्दी या उर्दू मे ही देना पड़ता है। श्रीयुत मुरलीधर जोशी ने अर्थशास्त्र पर हिन्दी मे कई उत्तम निबन्ध लिखे और सन् १९३१ मे बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की, तथा अर्थशास्त्र-सम्बन्धी विषय पर हिन्दी-निबन्ध मे प्रथम श्रेणी के अङ्क प्राप्त किये। इसी वर्ष मुझे आपकी हिन्दी की योग्यता का पता लगा। आप निस्सन्देह हिन्दी के होनहार लेखक हैं। सन् १९३२ मे एम्० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर प्रयाग-विश्वविद्यालय ने आपको दो वर्षों के लिये रिसर्च-स्कालर के पद पर नियुक्त किया। इसी समय आपकी इच्छा अर्थशास्त्र के किसी विषय पर पुस्तक लिखने की हुई और मेरे साथ उन्होंने इस पुस्तक को लिखना स्वीकार कर लिया। अब आजकल आप लखनऊ विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र के अध्यापक हैं।

यदि हिन्दी-संसार ने हम लोगो की इस पुस्तक को पसन्द कर हमारे उत्साह को बढ़ाया तो अर्थशास्त्र के अन्य विभागो पर भी इसी प्रकार की पुस्तकें लिखने का हम लोग प्रयत्न करेंगे।

श्रीदुबे-निवास, दारागञ्ज
श्रावणी पौर्णिमा
स० १९९८ वि०

दयाशङ्कर दुबे

विषयानुक्रमणिका

छठा अध्याय-माँग

सातवाँ अध्याय-उपभोक्ता की बचत

आठवाँ अध्याय-उपभोग की वस्तुओं का विभाग

नवाँ अध्याय-माँग की लोच

सम्पत्ति का उपभोग

पहला अध्याय

उपभोग का महत्व

अर्थशास्त्र के पाँच मुख्य विभागों में से एक विभाग 'उपभोग' है। साधारणतः उपभोग का मतलब किसी वस्तु का भोग या सेवन करना होता है। परन्तु अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग कुछ विशेषता से किया जाता है। उपभोग का अर्थ सेवाओं और वस्तुओं के उस भोग से है जिससे उपभोक्ता की तृप्ति हो। अगर किसी वस्तु के सेवन से उपभोक्ता को संतोष न हो, तो अर्थशास्त्र की दृष्टि से ऐसे भोग को उपभोग नहीं कह सकते। अगर हम एक रोटी का टुकड़ा आग में डालकर जला डाले तो सांसारिक दृष्टि से उस वस्तु का उपभोग हो चुका; क्योंकि वह और किसी काम की न रही। परन्तु अर्थशास्त्र की दृष्टि से उस वस्तु का उपभोग नहीं हुआ; क्योंकि उससे उपभोक्ता की तृप्ति नहीं हुई। हरएक वस्तु में कुछ-न-कुछ उपयोगिता रहती है। जब हम उस उपयोगिता का इस प्रकार प्रयोग करें जिस प्रकार हमको उससे तृप्ति या संतोष हो, तभी हम वास्तव में उस वस्तु का उपभोग करते हैं। रोटी का टुकड़ा खाने या आग में

डालने इन दोनों प्रकारों से उस रोटी के टुकड़े की उपयोगिता नष्ट हो जाती है, लेकिन खाने से मनुष्य की तृप्ति और सन्तोष होता है और आग में डालने से उसकी बरबादी होती है।

उपभोग का विषय बड़ा महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में इस विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। कई अर्थशास्त्र की पुस्तकों में दो एक अध्यायों में ही इस विषय का विवेचन मात्र कर दिया गया है, लेकिन आजकल इस विषय की महत्ता लोगों को विदित होने लगी है और अब अर्थशास्त्र का यह विभाग भी अन्य विभागों की समकक्षा में रखा जाने लगा है।

कभी कभी वस्तु का उपभोग अन्य वस्तु के उत्पन्न करने के लिए भी किया जाता है। इससे भी उसकी उपयोगिता कम हो जाती है; जैसे किसी कारख़ाने में कोयले का उपभोग। परन्तु इस प्रकार के उपभोग को अर्थशास्त्र में उपभोग नहीं कहते; क्योंकि इस प्रकार के उपभोग से किसी व्यक्ति की प्रत्यक्ष रूप से तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि वस्तु के इस प्रकार के उपभोग से जो वस्तु तैयार होती है उससे प्रत्यक्ष रूप से तृप्ति होती है। जब कोयले का उपभोग अग्नि उत्पन्नकर किसी व्यक्ति के शीत निवारण करने के लिए किया जाता है तब उसको कोयले का उपभोग कहा जायगा। अगर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि अर्थशास्त्र के सब विषयों की नींव उपभोग ही में है। प्राचीन से-प्राचीन काल के अर्थशास्त्र के इतिहास को देख जाइये और आजकल की दुनियाँ की चहल-पहल को देखिये। दोनों

का वास्तविक आरम्भ उपभोग मे ही है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य को नाना प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी वह तृप्ति करना चाहता है। कई एक आवश्यकताएँ तो ऐसी होती हैं जिनकी पूर्ति उसको अपनी जान बचाने के लिए करनी पड़ती है; जैसे भोजन, वस्त्र और निवास-स्थान। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसको श्रम और उद्योग करना पड़ता है। अपने उद्योग से या तो वह अपनी आवश्यकता की वस्तु स्वय बना लेता है या दूसरी वस्तु बनाकर या सेवा कर विनिमय से उस वस्तु को प्राप्त करता है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि अर्थशास्त्र-सम्बन्धी सब क्रियाओं का श्रीगणेश उपभोग ही में है। इन सब क्रियाओं का अन्त भी उपभोग मे ही है, क्योंकि जब इच्छित वस्तु या सेवा को प्राप्त करके उसका उपभोग कर लिया और तृप्ति हो गई, तब फिर उसके सम्बन्ध में और कुछ करने को नहीं रह जाता है।

प्रत्येक मनुष्य को उपभोग का महत्व जानने की आवश्यकता है। प्रत्येक उत्पादक व्यक्ति को कोई भी काम करने के लिए शक्ति और स्फूर्ति की आवश्यकता होती है। इनको प्राप्त करने के लिए उसको विशेष प्रकार के खाने, पीने, और पहनने की आवश्यकता होती है। अच्छी और पौष्टिक वस्तुओं का सेवन करने से मनुष्य की शक्ति और उत्साह में वृद्धि होती है और इसके विपरीत शराब पीने से या शक्ति ह्रास करनेवाली अन्य वस्तुओं के सेवन करने से उलटा असर होता है। शक्ति क्षीण होने से मनुष्य कम

उपार्जन कर सकता है। इसका फल यह होता है कि उसको खाने को भी पूरा नहीं मिल पाता है। आधुनिक काल मे, नाना प्रकार की मिलावट की वस्तुओं में, अपने काम की असली वस्तुओं को छाँटकर, उनका उपभोग करने से, प्रत्येक मनुष्य को सबसे अधिक सन्तोष होता है; और ऐसा ही करने की उसको कोशिश भी करनी चाहिए।

वस्तुओं का उचित रीति से उपभोग करना सरल काम नहीं है। जिनका अपने मन पर पूर्ण अधिकार है वही वस्तुओं का उचित उपभोग कर सकते हैं। यह सच है कि द्रव्य का उपार्जन जितना सरल है उसका उचित उपभोग उतना ही कठिन है। आजकल के लोग प्राचीन काल के लोगों की तरह अपनी सब आवश्यकीय वस्तुओं को स्वय पैदा नहीं करते हैं। वे किसी भी काम को करके द्रव्योपार्जन करते और उस द्रव्य से अपनी आवश्यकीय वस्तुएँ मोल लेते हैं। लेकिन प्रत्येक मनुष्य यह नहीं जानता है कि उसको किस-किस वस्तु की कितनी आवश्यकता है। अगर किसी व्यक्ति को बीस रुपया देकर इसलिए बाजार भेजिये कि वह अपनी जरूरत की वस्तुएँ मोल लेले तो बाजार पहुँचकर वह ठीक ठीक निश्चय नहीं कर सकेगा कि वह कौन-सी वस्तु ले। वह सोचेगा कि एक फाउन्टेनपेन ख़रीदे या एक सूट सिलवाये, एक जोड़ी जूता ख़रीदे या प्राइमस-स्टोव ख़रीदे, एक रुपये में सिनेमा देखे या उसको किसी भविष्य में आनेवाली आवश्यकता के लिए बचा रखे। ऐसे

अनेक प्रकार के प्रश्न हमारे ख़रीदार के मन में उपस्थित होंगे। अक्सर ऐसा देखा गया है कि ख़रीदार विज्ञापनों के धोखे या मित्रों के बहकाने में आकर ऐसी वस्तुएँ ख़रीद लेता है जिनकी उपयोगिता उसको उतनी नहीं होती जितनी और वस्तुओं की होती है। कभी-कभी ख़रीदार यह नहीं सोचता कि जो वस्तु वह ख़रीद रहा है उसके उपभोग का अंतिम परिणाम क्या होगा। इसलिये वह अपनी ख़राब आदत के कारण नशीली वस्तुएँ भी ख़रीद लेता है। इससे उसको अंत में हानि ही अधिक होती है। ऐसे लोगों को अपने द्रव्य की पूरी उपयोगिता नहीं मिलती। इसको प्राप्त करने के लिए हम को यह जानना चाहिए कि हमारी आवश्यकताएँ क्या-क्या हैं और कौन-सी वस्तु कितनी ख़रीदने से हमारी सबसे अधिक तृप्ति हो सकती है। एक व्यक्ति सोच-समझकर ख़र्चकर बीस रुपये मे इतनी उपयोगिता और सन्तोष प्राप्त कर सकता है जितना कि दूसरा व्यक्ति पचास रुपये में भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि पहला व्यक्ति उपभोग के महत्व और उसके रहस्य को जानता है, दूसरा नहीं।

हरएक उत्पादक या उत्पादक-संघ को भी उपभोग का विषय अच्छी तरह जानना चाहिए। उनको जानना चाहिए कि उपभोक्ता को किन-किन चीज़ों की कितनी ज़रूरत हैं। वस्तुओं की मंदी अथवा उनके अधिक प्रचारवश व्यापारिक मंदी और धूम-धाम से संसार में जो हलचल होती है उसका एक कारण

यह भी है कि उत्पादक आवश्यकता से अधिक या कम पैदा करते हैं।

किसी भी देश की शक्ति उस देश के निवासियों की शक्ति पर निर्भर रहती है। जिस देश के लोग लाभदायक और पौष्टिक वस्तुओं का सेवन करते हैं और नशीली और स्वास्थ्य को हानि पहुँचानेवाली अन्यान्य वस्तुओं को त्याग देते हैं उस देश के लोग हृष्ट-पुष्ट, बलवान् और प्रवीण होते हैं। इसके विपरीत आचरण करनेवाले लोग कमज़ोर, रोगी और आलसी होते हैं। देश की समृद्धि और रक्षा पहले प्रकार के लोगों से ही हो सकती है।

उपर्युक्त वर्णन से उपभोग का महत्व भली भाँति विदित होता है। इस पुस्तक में इसी महत्वपूर्ण विषय पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार किया जायगा।

दूसरा अध्याय

उपभोग-सम्बन्धी शब्दों का परिचय

उपभोग-सम्बन्धी विवेचन करने के पहले कुछ पारिभाषिक शब्दों का अर्थ जान लेना बहुत आवश्यक है। इसलिए इस अध्याय में कुछ ऐसे शब्दों का, अर्थशास्त्र की दृष्टि से, विवेचन किया जाता है जो उपभोग के विषय का प्रतिपादन करने में काम में आते हैं।

वस्तु—अर्थशास्त्र में उन चीज़ों को 'वस्तु' कहते हैं जिनसे मनुष्य को तृप्ति होती है। इनमे से कुछ चीज़े ऐसी होती हैं जिनको हम देख सकते हैं, छू सकते हैं और विनिमय कर सकते हैं - जैसे किताब, लकडी, मोटर इत्यादि। कुछ ऐसी हैं जिनको हम देख नहीं सकते हैं जैसे मित्रता, प्रसिद्धि इत्यादि। पहले प्रकार की वस्तुएँ भौतिक कहलाती है और दूसरे प्रकार की अवैयक्तिक। कुछ वस्तुएँ विनिमयसाध्य होती हैं और कुछ अविनिमयसाध्य।

सम्पत्ति—लौकिक व्यवहार में किसी व्यक्ति की सम्पत्ति से उसका रुपया, ज़ेवर, मकान, ज़मीन इत्यादि बहुमूल्य वस्तुओं का बोध होता है, और सम्पत्तिवान मनुष्य वही कहलाता है जिसके पास ऐसी वस्तुएँ बहुतायत से हों। लेकिन अर्थशास्त्र में

केवल इन्हीं चीजों को सम्पत्ति नहीं कहते। इस शब्द का प्रयोग अधिक उदारता से किया जाता है। अर्थशास्त्र मे उन सब वस्तुओं को सम्पत्ति कहते हैं जो उपयोगी हों और विनिमयसाध्य हों। उदाहरण के लिए हवा को लीजिये। यह उपयोगी है लेकिन विनि-मय साध्य नहीं। इसलिए इसकी गणना सम्पत्ति मे नहीं हो सकती। लेकिन किसी व्यवसाय की प्रसिद्धि (समृद्धि) उपयोगी भी है और विनिमय-साध्य भी। इसका क्रय-विक्रय हो सकता है। इसलिए यह वस्तु सम्पत्ति मे शामिल की जा सकती है। कई एक अर्थशास्त्रज्ञों का कहना है कि किसी वस्तु की सम्पत्ति मे गणना होने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी सख्या परिमित हो और वह श्रम से प्राप्त हो सके।

उपयोगिता—उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की चाहना होती है। इसका सम्बन्ध मन से होता है। इसलिए हम किसी वस्तु की उपयोगिता का वर्णन किसी माप या तौल से नहीं कर सकते। चूँकि प्रत्येक मनुष्य के मन में कुछ-न-कुछ भिन्नता होती है इसलिए किसी एक ख़ास वस्तु की उपयोगिता प्रत्येक मनुष्य को बराबर नहीं होती। किसी वस्तु का मूल्य तै करने में लोग उस वस्तु की उपयोगिता का विचार अवश्य करते हैं।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि हम किसी वस्तु-विशेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता उत्पन्न

कर सकते हैं। उदाहरण के लिए कुर्सी को लीजिये। बढ़ई ने अपने औज़ारों की मदद से लकडी का रूपान्तर करके उसमें लकड़ी से ज़्यादा उपयोगिता ला दी है। लकडी उसने उत्पन्न नहीं की। इसी प्रकार काम में आते-आते कुर्सी की उपयोगिता नष्ट होती जाती है। कुर्सी टूट जाती है लकड़ी पड़ी रहती है, लेकिन कुर्सी काम की नहीं रह जाती है।

मूल्य—इस शब्द का व्यवहार दो प्रकार से किया जाता है। कभी-कभी मूल्य शब्द का प्रयोग उपयोगिता के अर्थ में भी किया जाता है। जैसे हम कहते हैं कि अमुक वस्तु बहुमूल्य है। लेकिन वह अर्थ गौण है। अर्थशास्त्र में इस प्रकार के मूल्य के लिए हम उपयोगिता शब्द का उपयोग करते हैं।

मूल्य शब्द का प्रधान अर्थ विनिमय-मूल्य होता है। जब हम किसी वस्तु के बदले में एक दूसरी वस्तु को लेते हैं तो दूसरी वस्तु का परिमाण पहली वस्तु का मूल्य कहलाता है। जैसे—अगर हम एक गाय के बदले तीन बकरियाँ ले लें तो उस गाय का मूल्य तीन बकरियाँ हुआ। यह व्यावहारिक मूल्य भी कहलाता है। इस मूल्य की नींव उपयोगिता में होती है; क्योंकि जब किसी मनुष्य की दृष्टि में तीन बकरियों की उपयोगिता एक गाय से अधिक या कम से कम उसके बराबर न हो और उसके होश-हवाश दुरुस्त हों; तो वह गाय के बदले तीन बकरियाँ कभी न लेगा।

क़ीमत—किसी वस्तु का द्रव्य के रूप में मूल्य उसकी

क़ीमत है। जैसे—पहले उदाहरण में एक गाय का मूल्य तीन बकरियाँ कहा है। अगर हम कहें कि गाय का मूल्य ६०) रु० है तो ६०) रु० गाय की (या तीन बकरियों की भी) क़ीमत हो गई। पहले ज़माने में जब रुपया-पैसा विनिमय का माध्यम नहीं था तब वस्तुओं की अदल-बदल से काम किया जाता था। लेकिन इससे बहुत असुविधा होती थी। इस असुविधा को दूर करने के लिए रुपया-पैसा एक ऐसा विनिमय का माध्यम निकाला गया जो सब लोगों को रुचिकर है और जिससे वस्तुओं के क्रय-विक्रय में बहुत सुविधा हो गई है। आजकल के व्यवहार और व्यवसाय में किसी भी वस्तु का मूल्य द्रव्य में ही प्रकट किया जाता है।

द्रव्य—वह वस्तु जो विनिमय का माध्यम हो, द्रव्य कहलाता है। इससे विनिमय बड़ी आसानी से हो सकता है। प्राचीन काल में जब द्रव्य का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था तब मनुष्यों को अपनी आवश्यकीय वस्तुओं को प्राप्त करने में बड़ी दिक़्क़त होती थी। उसको किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़ना पड़ता था जिसके पास उसकी आवश्यकीय वस्तुएँ हों और जिसको उसकी वस्तुओं की आवश्यकता हो। अब द्रव्य के माध्यम से लोग अपनी वस्तुओं के बदले में द्रव्य प्राप्त करके, फिर द्रव्य के विनिमय से अपनी आवश्यकीय वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। आजकल संसार में धात्विक और काग़ज़ी दोनों द्रव्यों ही का चलन है। धात्विक द्रव्य के

सिक्के एक ख़ास वस्तु के बने होते है। उनका वज़न और उनकी शक्ल भी किसी मुल्क की सरकार द्वारा निश्चित रहती है। काग़ज़ी द्रव्य का सञ्चालन भी सरकार ही करती है। अधिकतर काग़ज़ी द्रव्य विनिमय-साध्य होते हैं अर्थात् सरकार काग़ज़ी द्रव्य के बदले धात्विक द्रव्य देने का वादा करती है। कोई-कोई काग़जी द्रव्य अत्यधिक परिमाण में चलाये जाने के कारण विनिमय-साध्य नहीं भी होते हैं।
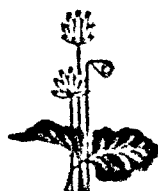
तीसरा अध्याय

आवश्यकताएँ

जैसा कि हम पहले बतला आये हैं उपभोग द्वारा हमारी आवश्यकताओं की तृप्ति होती है। इसलिए इस अध्याय में आवश्यकताओं पर ही विचार किया जाता है। आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूर्ण करने के लिए वह परिश्रम करता है। बाजार में कई एक वस्तुओं को देखकर उनको खरीदने और उपभोग करने की इच्छा होती है। लेकिन अगर हम उन वस्तुओं को प्राप्त करने का उद्योग न करें तो वह केवल कोरी इच्छा ही रह जाती है। किसी आवश्यकता की तृप्ति के लिए उद्योग करना बहुत ज़रूरी है।

प्राचीन काल से ही मनुष्यों को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रही है। जिस समय लोग वन में जगली जानवरों के समान रहते थे उस समय भी उन लोगों को अपनी प्राण रक्षा के लिए जल, वायु, अन्न इत्यादि की आवश्यकता थी। जैसे जैसे सभ्यता में वृद्धि होती गई, लोगों की आवश्यकताएँ भी बढती गई। जब आग का आविष्कार हुआ तब मनुष्यों को नाना प्रकार के भोजनों की आवश्यकता हुई। इसी प्रकार एक आवश्यकता के बाद दूसरी आवश्यकता प्रकट होती गई, भोजन की आवश्यकता की तृप्ति के बाद वस्त्रों की आवश्यकता हुई। फिर रहने के लिए

मकान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सब की तृप्ति के बाद विशेष प्रकार के भोजन, उत्तम वस्त्र, ज़ेवर और विशाल भवन की आवश्यकताएँ होती गईं। इसके बाद सवारी शस्त्र संगीत, मित्रता इत्यादि आवश्यकताएँ भी प्रकट हुईं। साराश यह है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता बढती गई और पुरानी आवश्यकताओं की तृप्ति होती गई, त्यों-त्यों नई आवश्यकताएँ उनके स्थान पर आती गईं, यहाँ तक कि अब उनकी संख्या अपरिमित हो गई।

आवश्यकता और उद्योग का गहरा सम्बन्ध है। जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकता बढती जाती है वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता रहता है। आरम्भ में यही क्रम चलता है लेकिन कभी-कभी उद्योग से भी नई आवश्यकताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। बहुतेरे व्यक्ति किसी ख़ास आवश्यकता की तृप्ति के लिए ही उद्योग और परिश्रम नहीं करते। वे लोग अपनी फ़ुरसत का समय आलस्य मे नहीं बिता देते, वरन् विज्ञान, साहित्य इत्यादि का मनन करते हैं। इससे ये लोग नयी-नयी बातों का आविष्कार करते हैं। इन आविष्कारों की सहायता से नयी-नयी वस्तुएँ बनायी जाती हैं और मनुष्यों को इन वस्तुओं की भी आवश्यकता प्रतीत होनी है।

आवश्यकताओं के लक्षण

आवश्यकताएँ अपरिमित हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। कोई कैसा ही धनवान् मनुष्य क्यों न हो, यह नहीं कह सकता कि उसकी

सब आवश्यकताओं की तृप्ति हो गई है, क्योंकि ज्यों ही एक आवश्यकता की तृप्ति होती है त्यों ही दूसरी, उसके स्थान पर, आ खड़ी होती है। आवश्यकताओं की वृद्धि होने से ही सभ्यता की भी उन्नति होती है।

आवश्यकताएँ अपरिमित तो हैं, लेकिन यदि यथेष्ट साधन हों तो मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता की भी किसी एक समय में पूर्ति हो सकती है। उदाहरण के लिए एक भूखे आदमी को लीजिए। उसको भोजन की आवश्यकता है, लेकिन उसके भोजन की भी एक सीमा है। पाच-छः रोटियों से उसका पेट भर जाता है और उसको उस वक्त फिर रोटियों की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार किसी एक आवश्यकता का यथेष्ट साधन रहने से किसी ख़ास समय में तृप्ति हो सकती है। कहा जाता है कि कई एक इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति नहीं हो सकती, जैसे—धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा, बडप्पन की इच्छा इत्यादि। लेकिन ये इच्छाएँ मिश्रित इच्छाएँ हैं। ये स्वतः अकेली इच्छा नहीं हैं। धन की इच्छा देखने में तो एक ही इच्छा हैं, लेकिन इसके अन्तर्गत उस धन द्वारा प्राप्त होनेवाली अनेक वस्तुओं की इच्छा छिपी रहती है।

किसी आवश्यकता की तृप्ति के एक से अधिक साधन होते हैं जिनमें आपस में प्रतियोगिता रहती है। जैसे—धूम्रपान की आवश्यकता तम्बाकू, सिगरेट, सिगार, बीडी इनमें से किसी से भी तृप्त हो सकती है। इसी से ये चीजें एक दूसरे का स्थान ग्रहण

करने की कोशिश करती हैं। दुर्भिक्ष के समय ग़रीब लोग गेहूँ की रोटी के बदले चना, मड़ुवा इत्यादि की रोटी खाते हैं। इसी प्रकार आजकल रेलगाड़ी और मोटर-लारियों में आपस में प्रतियोगिता बढ़ रही है।

कई एक आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जो आपस मे एक दूसरे की पूरक होती हैं। जैसे—इक्के के साथ घोड़े की, या टैनिस के बल्लों के साथ गेंदों की आवश्यकता परस्पर-पूरक हैं। ये आवश्यकताएँ साथ ही साथ चलती हैं।

जब हम किसी आवश्यकता की पूर्ति करते रहते हैं तो फिर वह आवश्यकता स्वाभाविक-सी हो जाती है। जैसे कोई मनुष्य किसी के बहकाने से शराब पी ले, तो फिर बाद को उसको शराब का व्यसन हो जाता है और वह फिर पूरा पियक्कड़ बन जाता है। उसको शराब पीने की आदत ऐसी ज़बर्दस्त हो जाती है कि वह आसानी से उस आदत को छोड़ नहीं सकता। इसी प्रकार और आवश्यकताओं का भी अभ्यास पड़ जाता है। इसी अभ्यास पर मनुष्यों का रहन-सहन का दर्जा भी निर्भर रहता है। आवश्यकताओं के घटने-बढने या और प्रकार के परिवर्तन से रहन-सहन के दर्जे में भी घट-बढ़ होता रहता है।

चौथा अध्याय

उपभोग और सन्तोष

सब लोगों को यह मान्य है कि मनुष्य का परम उद्देश्य सब से अधिक सुख और सन्तोष प्राप्त करना है। वह प्राप्त-सुख की वृद्धि के लिए और दुःख को टालने या कम करने के लिए सदैव उद्योग किया करता है।

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि सुख क्या है और दुःख क्या है। नैय्यायिकों ने सुख-दुःख को अन्तर्वेदना (feeling) बतलाकर कहा है कि "अनुकूल वेदनीयं सुख" अर्थात् जो वेदना हमारे अनुकूल है वह सुख है और "प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्" अर्थात् जो वेदना हमारे प्रतिकूल है वह दुःख है। मनुष्य की अनेक इच्छाएँ और आवश्यकताएँ होती हैं। जब उसकी इन आवश्यकताओं की तृप्ति हो जाती है तो उसको सन्तोष मिलता है और वह सुख की वेदना का अनुभव करता है। इसके विपरीत जब उसकी आवश्यकताओं की तृप्ति नहीं होती तो उसको असन्तोष होता है और उसको दुःख की वेदना होती है। उदाहरण के लिए भोजन करने से मन को जो तृप्ति होती है उसे सुख कहते हैं और भोजन न मिलने से उसको जो कष्ट होता है उसको दुःख कहते हैं।

पिछले अध्याय में यह बतलाया गया है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित हैं। जैसे ही एक आवश्यकता की पूर्ति हुई शीघ्र ही दूसरी आवश्यकता उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। हमको यह भी मालूम है कि आवश्यकताओं की तृप्ति से ही मनुष्य को सुख और सन्तोष मिलता है। ऐसी दशा में यह बात स्वयंसिद्ध है कि किसी भी मनुष्य को पूर्ण सुख कभी नहीं मिल सकता। उसकी कुछ न-कुछ आवश्यकताएँ ऐसी बनी ही रहेगी जिनके तृप्त न होने से उसको असन्तोष और दुःख होगा। इसके अतिरिक्त, पाये हुए सुख से भी मनुष्य की तृप्ति नहीं रहती। चूंकि उसको प्रति दिन नये-नये सुख नहीं मिल सकते हैं, इसलिये उसको सदा असन्तोष ही बना रहता है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसी दशा में मनुष्य का कर्तव्य क्या है? मनुष्य को पूर्ण सन्तोष मिलना असम्भव है, क्या इसलिये उसे सब काम-धन्धों को छोड़कर जङ्गलों में भटककर संन्यासी हो जाना चाहिये, या सन्तोष और असन्तोष का विचार छोड़कर अपने आप इच्छा, तृष्णा और वासना का दास बनकर उनको अपनी स्वाधीनता खो देनी चाहिये?

आजकल यह बात मानी जाती है कि आवश्यकताओं की वृद्धि से ही सभ्यता की वृद्धि हुई है। जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं और वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता गया वैसे-वैसे सभ्यता की वृद्धि होती गई। इसी प्रकार उद्योग करते रहने से नई प्रकार की आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं और उनकी

तृप्ति के लिए साधन निकाले जाते हैं। इससे यह बात प्रकट होती है कि आवश्यकताओं को बढ़ाने से ही मनुष्य की उन्नति होती है, और यह बात निर्विवाद है कि उन्नति से मनुष्य को सुख और सन्तोष होता है।

अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मालूम हो जाता है कि आवश्यकताओं को एकदम मर्यादा से बाहर बढ़ा देने से अधिकतम सन्तोष नहीं होता। यहाँ इस कथन का मतलब यह नहीं है कि सब प्रकार का असन्तोष निन्द्य है। इच्छा के मूलगत असन्तोष को निन्दनीय नहीं कहा जा सकता, जो आदेश करता है कि मनुष्य को अपनी वर्तमान स्थिति में पड़े पड़े सडना नहीं चाहिये परन्तु यथा-शक्ति अधिकाधिक सुधार करके अपने को और समाज को उन्नति की ओर ले जाना चाहिए। यही वह असन्तोष है जिससे सभ्यता की उन्नति होती आई है। लेकिन वह असन्तोष निन्दनीय है जिससे लोग किसी वस्तु को पाने के लिये रात दिन हाय-हाय करते रहें, और उसके न मिलने पर रोया करे और शिकायतें करे।

तृष्णा और असन्तोष की सुव्यवस्थित मर्यादा बाँधना एकदम असम्भव नहीं है। हाँ, इसके लिए एक विशेष शक्ति की आवश्यकता होती है, जिसको मनोनिग्रह कहते हैं। जो मनुष्य अधिकतम सन्तोष और सुख पाना चाहता है उसके लिए अपने मन और इन्द्रियों को वश में करना अत्यन्त आवश्यक होता है। अगर हम अपने को तृष्णा और वासना में बहा दें तो हमारे असन्तोष की कोई सीमा न होगी। अगर कोई ग़रीब किसान, जिसको सदा पेट की हाय लगी

रहती है एक मोटरगाड़ी रखने की प्रबल तृष्णा करता रहे, सदा उसी ध्यान में मग्न रहे, तो शायद ही वह सुख और सन्तोष प्राप्त कर सकता है। इसके प्रतिकूल अगर वह अपने मन को वश में करके सोचे कि इस समय ऐसी अवस्था में मोटरगाड़ी की इच्छा करना उसे उचित नहीं है; क्योंकि इस इच्छा की तृप्ति करना उसकी शक्ति के बाहर की बात है, इसलिए उसको उचित है कि उन्हीं वस्तुओं को संग्रह और उपभोग करने का प्रयत्न करे जो उसके सामर्थ्य के भीतर हैं, तो इससे उसको अधिक सुख और सन्तोष प्राप्त होगा।

इससे यह प्रकट हो जाता है कि मनुष्य को अधिकतम सुख और सन्तोष प्राप्त करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को मर्यादित करे। इसके साथ ही साथ उसको अपनी फिज़ूल और हानिदायक इच्छाओं को दबाना चाहिए। अगर स्वास्थ्य और बुद्धि को हानि पहुँचानेवाली इच्छाओं का दमन न किया गया तो परिणाम में मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता।

भारतवर्ष में प्राचीन काल में अनेक महात्मा हो गये हैं जिन्होंने मनोनिग्रह तथा इन्द्रिय-निग्रह द्वारा अपनी आवश्यकताओं को अपने वश में करके और मर्यादित करके परम सुख, सन्तोष और शान्ति पायी है। प्राचीन काल में ही क्यों, इस समय परम पूज्य महात्मा गान्धी इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। लेकिन पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग में आने से भारतवर्ष के लोग भी भौतिक सभ्यता

पर विश्वास करने लगे हैं। हम लोगों ने अपनी आवश्यकताओं का बहुत ही अधिक विस्तार कर दिया है। भारतवर्ष में अशान्ति और असन्तोष की लहर का यह एक प्रधान कारण है। देश को शान्त, सन्तुष्ट और समृद्धिशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि यहाँ के निवासी मनोनिग्रह तथा इन्द्रिय-निग्रह द्वारा अपने को तृष्णा और वासना की शृङ्खलाओं से मुक्त करके, उनको अपने वश में करके सुखी और सन्तुष्ट बनें। उनको सादगी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। सादा जीवन और उच्च विचार का ध्येय ही आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम है।

पाँचवाँ अध्याय

उपयोगिता

उपयोगिता की एकाई——इस अध्याय में उपयोगिता सम्बन्धी कुछ शब्दों और नियमों का विवेचन किया जाता है। दूसरे अध्याय मे यह बतलाया जा चुका है कि उपयोगिता का उपभोग करनेवाले व्यक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न मनुष्यों को भिन्न भिन्न होती है। उसी वस्तु की उपयोगिता किसी एक मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए भिन्न-भिन्न मनुष्यों की उपयोगिता की तुलना साधारणतः नहीं की जा सकती; न किसी एक मनुष्य के लिये भिन्न भिन्न परिस्थितियों मे वस्तुओं की तुलना ही की जा सकती है। हम केवल किसी एक समय में, जब किसी एक मनुष्य की परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होता, उसकी भिन्न-भिन्न वस्तुओं से प्राप्त होनेवाली उपयोगिता का अन्दाज़ा लगाकर तुलना कर सकते हैं। किसी वस्तु के उपभोग करने से सन्तोष प्राप्त होता है। इसी सन्तोष का अन्दाज़ा लगाकर हम वस्तुओं की उपयोगता का अन्दाज़ा लगाते हैं। इस तुलना के लिए यह मान लिया जाता है कि किसी एक ख़ास वस्तु के उपभोग से जो सन्तोष प्राप्त होता है वह एक के बराबर है और उसकी उपयोगिता भी एक है। अब अन्य वस्तुओं के उपभोग से

प्राप्त सन्तोष की तुलना इस प्रथम वस्तु के उपभोग से प्राप्त सन्तोष से की जाती है और उसी के अनुसार उनकी उपयोगिता बतलाई जाती है। मान लीजिये कि किसी मनुष्य ने एक समय एक केला और एक आम खाया। दोनों के उपभोग से उसे कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ, परन्तु आम के उपभोग से उसे जो सन्तोष हुआ वह केला के उपभोग से प्राप्त सन्तोष से क़रीब चौगुना था। अब यदि हम मान ले कि एक केला की उपयोगिता उसे एक है तो एक आम की उपयोगिता उसे चार होगी। इसी प्रकार एक रोटी खाने से उसे उस समय जो सन्तोष हुआ उसकी मात्रा एक केला के उपभोग से प्राप्त सन्तोष से यदि दस गुनी है तो एक रोटी की उपयोगिता उसे दस होगी। अब दूसरी रोटी खाने से उसे जो सन्तोष प्राप्त हुआ वह यदि एक केला के उपभोग से प्राप्त सन्तोष से पाँच गुना है तो दूसरी रोटी की उपयोगिता उसे पाँच होगी। यहाँ एक केला की उपयोगिता एक मानी गयी है, यही उस समय सब वस्तुओं की उपयोगिता की तुलना करने के लिये उपयोगिता की एकाई है और एक केला के उपभोग से प्राप्त सन्तोष से अन्य वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त सन्तोष की तुलना करके ही अन्य वस्तुओं की उपयोगिता की मात्रा बतलाई गई है। जब कभी किसी एक मनुष्य के लिए वस्तुओं की उपयोगिता की तुलना की जाती है तब उस तुलना के लिये उपयोगिता की कोई एकाई मान ली जाती है और उस समय सब वस्तुओं की उपयोगिता का अनुमान इसी एकाई के अनुसार लगाया जाता है, परन्तु यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि भिन्न-

भिन्न तुलनाओं के लिये उपयोगिता की एकाई भिन्न-भिन्न रहती है। यदि एक समय वस्तुओं की उपयोगिता की तुलना करने के लिये एक मनुष्य को एक केला के उपभोग से प्राप्त सन्तोष को एक के बराबर मान लिया गया और उसकी उपयोगिता एक मान ली गई; तो किसी अन्य समय उसी मनुष्य की वस्तुओं की उपयोगिता जानने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक केला की उपयोगिता उस समय भी एक मान ली जाय। दोनों समय में एक केला की उपयोगिता बराबर न होगी; क्योंकि मनुष्य की परिस्थिति के अनुसार केला की उपयोगिता भी भिन्न हो जायगी। प्रत्येक तुलना के लिए उपयोगिता की कोई एकाई मान ली जाती है और उसी के अनुसार उस समय सब वस्तुओं की उपयोगिता के परिमाण का अन्दाज़ा लगाया जाता है।

वस्तुओं की एकाई—वस्तुएँ साधारणतः दो प्रकार की होती हैं। कुछ वस्तुएँ तो ऐसी होती हैं जिनको विभाजित करने से उनका मूल्य कम नहीं होता, जैसे यदि हम दस तोले सोने का एक टुकड़ा ले और उसके एक-एक तोले के दस टुकड़े करें, तो एक तोले वाले दसों टुकड़ों का मूल्य दस तोले के टुकड़े के बराबर होगा। इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ हैं—गेहूँ, चावल, दाल, कपड़ा, चाँदी, लोहा इत्यादि। कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनको विभाजित करने से मूल्य में बहुत कमी आ जाती है जैसे—यदि हम किसी कुर्सी के चार टुकड़े कर डाले तो चारों टुकड़ों का मूल्य कुर्सी के मूल्य के बराबर न होगा। इस प्रकार की अन्य वस्तुएँ हैं—मकान, पुस्तक, छाता, कमीज़, गाय,

बैल, घोडा इत्यादि।

जिन वस्तुओं का मूल्य विभाजित करने से कम नहीं होता उनकी एकाई भिन्न-भिन्न तुलना के लिये भिन्न-भिन्न होती है। जैसे एक सेर गेहूँ, एक मन गेहूँ इत्यादि। गेहूँ को जब बड़े परिमाण में तौलना होता है तो मन का उपयोग किया जाता है। कम परिमाण के लिए सेर ही से काम लिया जाता है। सेर का तौल भी भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न भिन्न हैं। कहीं एक सेर १०० रुपये के वज़न के बराबर है तो कहीं ८० रुपये के बराबर और कहीं २८ रुपये के बराबर। परन्तु किसी एक समय मे तुलना के लिए एक ही प्रकार के सेर का उपयोग किया जाता है। अन्य देशों मे गेहूँ के तौल के लिये टन, हडरवेट, पाउड इत्यादि का उपयोग होता है। कपड़े को मापने के लिये गज़ का उपयोग होता है। सोना तौलने के लिये तोला, माशा रत्ती का उपयोग होता है।

जिन वस्तुओं को विभाजित करने से मूल्य में कमी होती है उनकी एकाई एक रहती है। जैसे—एक मकान, एक गाय, एक पुस्तक, एक कुर्सी इत्यादि।

सीमांत उपयोगिता—यदि किसी मनुष्य के पास दस सेर गेहूँ हो, तो दसवें सेर की उपयोगिता दस सेर गेहूँ की सीमात उपयोगिता मानी जायगी। किसी वस्तु के किसी परिमाण की सीमात उपयोगिता उस वस्तु की अन्तिम एकाई की उपयोगिता को कहते हैं। सीमात उपयोगिता और कुल उपयोगिता में बहुत अन्तर

है। दस सेर गेहूँ की कुल उपयोगिता दसों सेर गेहूँ की उपयोगिता के योग के बराबर होगी, जब कि उसकी सीमांत उपयोगिता केवल दसवें सेर की उपयोगिता के बराबर होगी। यदि किसी मनुष्य के पास एक ही सेर गेहूँ हो तो उसकी सीमांत उपयोगिता और कुल उपयोगिता एक सी होगी। परन्तु जैसे-जैसे वस्तु का परिमाण बढ़ता जायगा सीमांत उपयोगिता और कुल उपयोगिता मे भी अन्तर बढ़ता जायगा।

सीमांत-उपयोगिता-ह्रास नियम—अगर हम किसी वस्तु के परिमाण का एक ही समय में क्रमशः उपभोग करते रहें तो उसकी सीमांत-उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। यह मनुष्य-स्वभाव ही है कि जब उसके पास किसी वस्तु के परिमाण की वृद्धि होती जाती है तो उसकी चाह उस वस्तु के लिए कम होती जाती है। इसी प्रकार एक ही समय एक ही वस्तु के उपभोग करने से उस वस्तु की चाह कम होती जाती है और उस वस्तु के अधिक सेवन से उसकी उपयोगिता भी कम होती जाती है। जैसे पहला अमरूद खाने से किसी मनुष्य को बहुत आनन्द प्राप्त होगा और उसको उस अमरूद में बहुत उपयोगिता जान पड़ेगी। मान लीजिए, यह उपयोगिता ३० के बराबर है। दूसरा अमरूद खाने से उसको कुछ कम तृप्ति होगी। इस अमरूद की उपयोगिता शायद उसको २५ के बराबर होगी। इसी प्रकार तीसरे, चौथे और पाँचवे अमरूदों को खाने से उसको क्रमशः कम तृप्ति प्राप्त होती जायगी। इसलिए इन अमरूदों की उपयोगिता क्रमशः घटती जायगी। मान

लीजिए कि तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे अमरूद की उपयोगिता उसके लिए २०, १५, १० और ५ के बराबर है। इन ६ अमरूदों से उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। लेकिन मान लीजिए कि वह मित्रों के दबाव से एक और सातवाँ अमरूद भी खा ले, तो उसको उससे कुछ भी उपयोगिता प्राप्त न होगी; क्योंकि उसकी तृप्ति अमरूदों से हो चुकी थी। इसलिए इस सातवें अमरूद की उपयोगिता उसके लिए शून्य हुई। लेकिन अगर वह ज़बरदस्ती एक और आठवाँ अमरूद भी ठूस ले, तो शायद उसके पेट में कुछ गड़बड़ी होकर उसको उपयोगिता के बदले कुछ अनुपयोगिता मिलने की सम्भावना भी हो। मान लीजिये कि आठवे अमरूद की उसके लिए अनुपयोगिता ५ अर्थात्—५ उपयोगिता है।

यहाँ पर यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि किसी वस्तु के अधिक परिमाण में सेवन करने से कुल उपयोगिता नहीं घटती; परन्तु सीमान्त-उपयोगिता ही घटती है। कुल उपयोगिता तो बढती जाती है जब तक कि पूर्ण तृप्ति प्राप्त न हो जाय, लेकिन इसके बढने का अनुपात कम होता जाता है। इस अमरूदवाले उदाहरण में एक अमरूद खाने से उपभोक्ता को ३० उपयोगिता मिली और दो अमरूद खाने से ३०+२५=५५ उपयोगिता मिली जो कि दो अमरूदों की कुल उपयोगिता हुई। लेकिन पहले अमरूद से उपभोक्ता को ३० सीमात उपयोगिता थी; लेकिन दो अमरूद खाने से सीमात उपयोगिता २५ हो गई।

अगले पृष्ठ में दिये हुए कोष्ठक में ऊपर लिखे अनुसार अमरूदों

की उपयोगिता दी जाती है:—

अमरूद	उपयोगिता	सीमान्त उपयोगिता	कुल उपयोगिता
पहला	३०	३०	३०
दूसरा	२५	२५	५५
तीसरा	२०	२०	७५
चौथा	१५	१५	९०
पाचवा	१०	१०	१००
छठा	५	५	१०५
सातवा	०	०	१०५
आठवां	−५	−५	१००

इस कोष्ठक से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि ज्यों-ज्यों अधिक अमरूद खाये जायेंगे उनकी सीमात उपयोगिता कम होती जायगी, लेकिन कुल उपयोगिता तब तक बढ़ती जायगी जब तक किसी वस्तु के उपयोग से अधिकतम तृप्ति प्राप्त न हो जाये। इसके बाद अनुपयोगिता होने से कुल उपयोगिता भी घट जायगी। लेकिन ऐसी अवस्था बहुत ही कम पाई जाती है जब कि मनुष्य किसी वस्तु का इतने परिमाण में सेवन करे कि उसको अनुपयोगिता मिलने लगे; क्योंकि जैसा आगे बतलाया जायगा, हर एक मनुष्य अपने द्रव्य को किसी एक वस्तु पर उतना ही ख़र्च करेगा जिससे उसको कम-से-कम

उस द्रव्य की उपयोगिता के बराबर उपयोगिता मिले। हाँ, अगर कोई वस्तु बिना मूल्य मिल जाय और मनुष्य को अपने स्वास्थ्य का कुछ भी ख़्याल न हो तो वह अधिकतम तृप्ति मिलने पर भी खाता जा सकता है।

पिछले पृष्ठ पर दिये हुए अंकों का रेखा-चित्र नीचे दिया जाता है। इससे सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास नियम और स्पष्ट हो जाता है।
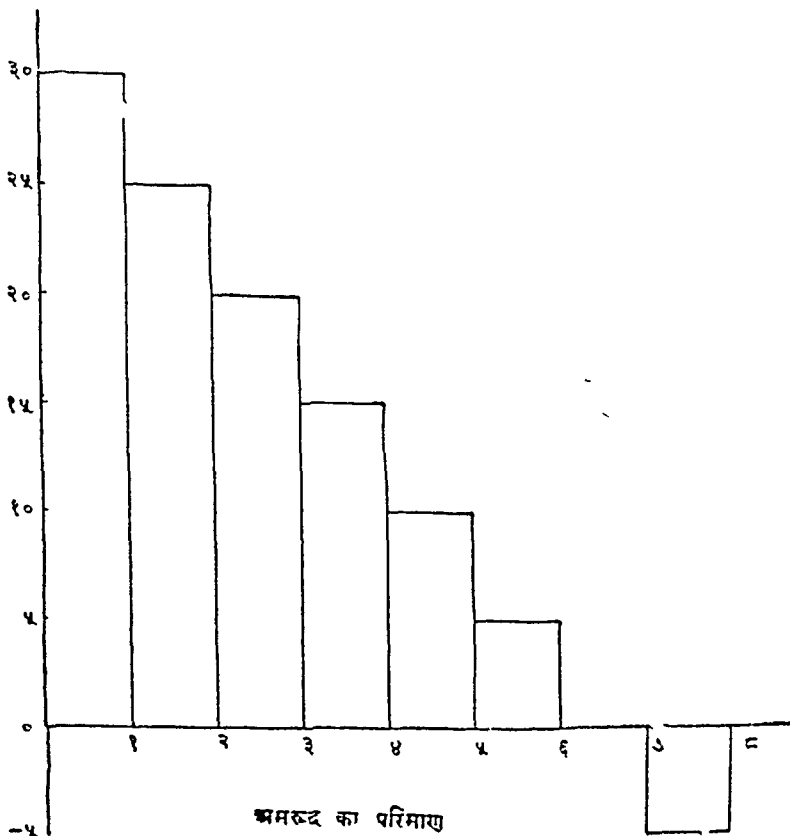
इस रेखा-चित्र मे लम्बों की ऊँचाई अमरूदों की सीमांत उपयोगिता बतलाती है। इस चित्र से यह स्पष्ट मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों अधिक अमरूद खाये गये, प्रत्येक की सीमांत उपयोगिता घटती गई और लम्बों की ऊँचाई भी कम होती गई यहाँ तक कि सातवें अमरूद की उपयोगिता बतलानेवाले लम्ब की ऊँचाई कुछ नहीं है और आठवे का लम्ब नीचे चला गया है, जिससे यह मालूम होता है कि आठवे अमरूद से अनुपयोगिता प्राप्त हुई। इस चित्र में इन लम्बों का क्षेत्रफल कुल उपयोगिता बतलाता है। यदि हमें चार अमरूदों की कुल उपयोगिता मालूम करना हो तो पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे लम्बों के क्षेत्रफलों को जोड़ देने से वह आसानी से मालूम हो जायगी।

सीमांत-उपयोगिता-ह्रास-नियम को अधिक स्पष्ट करने के लिए हम एक ऐसी वस्तु का उदाहरण लेते हैं जो छोटे-से-छोटे परिमाण में ली जा सकती है। नीचे के कोष्ठक और रेखाचित्र में एक परिवार के एक महीने के लिये १० सेर चीनी की सीमांत उपयोगिता और कुल उपयोगिता दिखलाई गई है।

सेर	सीमान्त उपयोगिता	कुल उपयोगिता
पहला	५५	५५
दूसरा	५०	१०५
तीसरा	४५	१५०
चौथा	४०	१९०
पांचवां	३५	२२५
छठा	३०	२५५
सातवां	२५	२८०
आठवा	२०	३००
नवा	१५	३१५
दसवां	१०	३२५
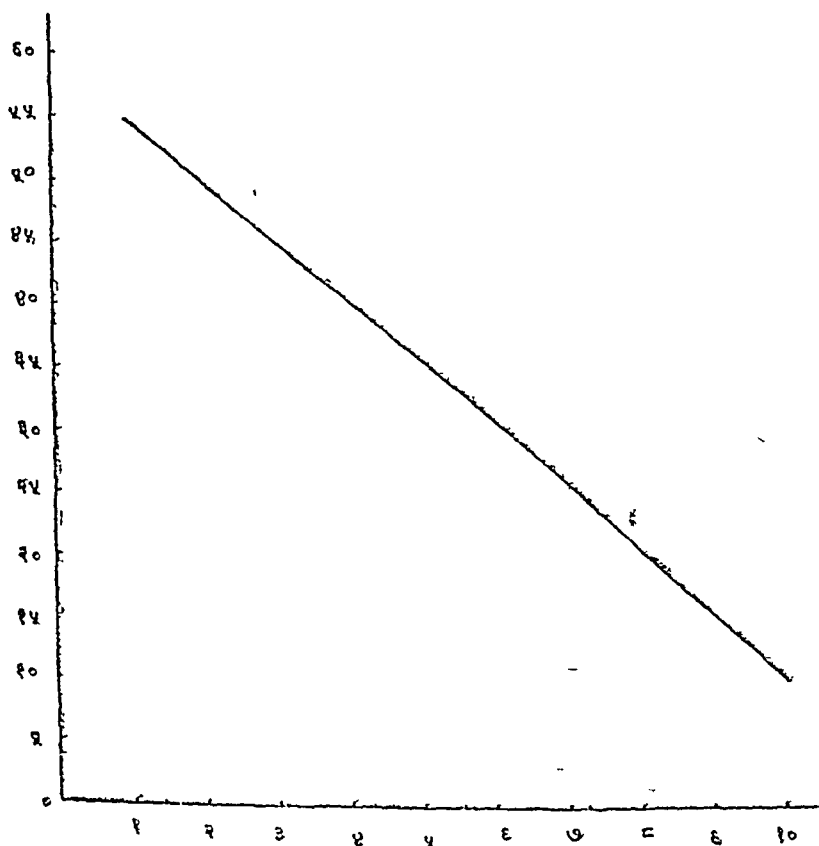
जैसे पहिले रेखाचित्र में प्रत्येक अमरूद की उपयोगिता दिखलाई गई थी उसी प्रकार इस रेखाचित्र में भी प्रत्येक सेर चीनी की उपयोगिता दिखलाई गई है। लेकिन पहले रेखाचित्र में उपयोगिता लम्ब के रूप में दिखाई गई है और इस लेखाचित्र में उपयोगिता वक्र रेखा द्वारा दिखलाई गई है। यह वक्र रेखा नीचे को गिरती

जा रही है जिससे यह सूचित होता है कि प्रत्येक सेर चीनी की उपयोगिता घटती जा रही है।
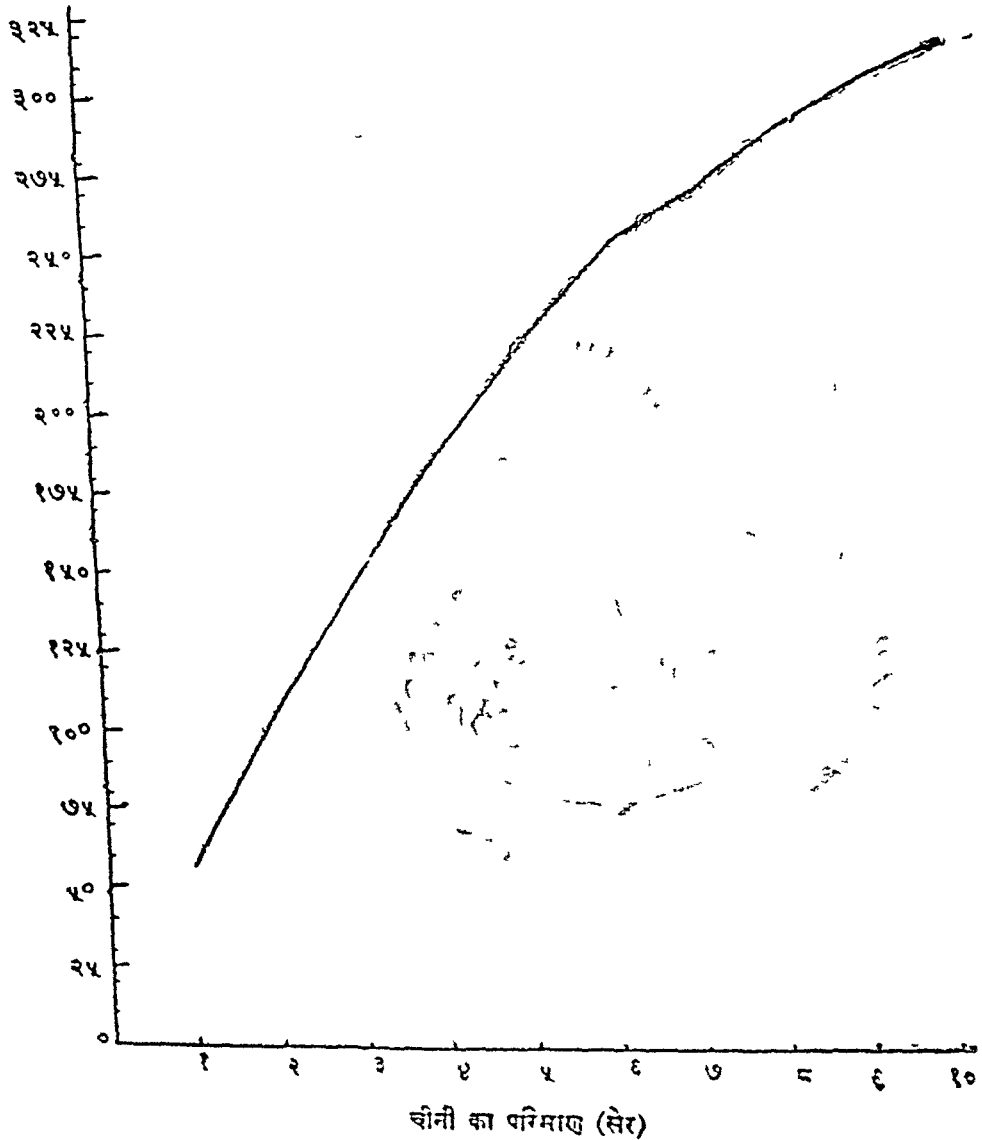
पिछले पृष्ठ पर दिये हुए रेखाचित्र में १० सेर चीनी की कुल-उपयोगिता दिखलाई गई है।

इस रेखा-चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी वस्तु के अधिक परिणाम में सेवन करने से कुल उपयोगिता बढ़ती है; क्योंकि वक्र रेखा जो कुल उपयोगिता दर्शा रही है, ऊँची होती जा रही है।

इस उपयोगिता-ह्रास-नियम में यह बात मान ली गई है कि वस्तु का उपभोग किसी ख़ास स्वभाव के मनुष्य द्वारा किसी ख़ास समय में और ख़ास परिस्थिति में हुआ है। अगर कोई मनुष्य एक अमरूद सुबह, एक दोपहर को और एक शाम को खाये तो सम्भव है कि प्रत्येक अमरूद की उपयोगिता उसको बराबर मालूम हो। लेकिन पहले, दूसरे और तीसरे अमरूद खाने में बहुत समय का अन्तर हो गया है इसलिये यह नियम यहाँ लागू नहीं होता है। इसी प्रकार परिस्थिति और स्वभाव का भी इस नियम में भी प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि शराब ज्यों-ज्यों ज़्यादा पी जाती है त्यों त्यों उसको अधिक पीने की इच्छा होती है। इसलिये पहले प्याले से दूसरे प्याले की उपयोगिता अधिक मालूम होती है इत्यादि। लेकिन यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि शराब पीने के बाद उस मनुष्य के होश-हवाश दुरुस्त नहीं रहते, उसकी स्थिति पहले की-सी नहीं रहती। इसलिये इस असाधारण दशा में उसको अधिक शराब पीने से अधिक उपयोगिता मालूम होती है।

इस नियम के सम्बन्ध मे एक आक्षेप यह भी है कि अगर किसी वस्तु का बहुत सूक्ष्म परिमाण में उपभोग किया जाय तो पहले उसकी सीमान्त-उपयोगिता मे ह्रास के बदले वृद्धि होती है। अगर हम अमरूद की बहुत ही छोटी-छोटी फाँकें करके खाँय, तो शायद चार-पाँच फाँक तक सीमान्त-उपयोगिता की वृद्धि हो और दस-बारह फाँक तक सीमान्त-उपयोगिता बराबर रहे; लेकिन किसी एक सीमा के बाद फिर उपयोगिता-ह्रास-नियम लागू हो जायगा।

कुछ बाहरी दिखावट और फैशन की चीज़े ऐसी भी होती हैं जिनके परिमाण में वृद्धि होने पर भी उनकी उपयोगिता में वृद्धि होती है। अगर दो धनी लोगों के पास एक-एक मोटरकार हो और उनमें से एक मनुष्य एक और मोटरकार ख़रीद ले, तो उसको दूसरी मोटरकार से अधिक सन्तोष मालूम पड़ता है और दूसरी मोटर की उपयोगिता पहली से अधिक मालूम पड़ती है; क्योंकि दो मोटर होने से वह अपने आप को पड़ोसी से श्रेष्ठ समझने लगता है।

इसी प्रकार कुछ ऐसी दुष्प्राप्य और अप्राप्य वस्तुएँ हैं जिनकी वृद्धि से उपयोगिता मे बहुत वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि किसी मनुष्य के पास एक बड़ा बहुमूल्य हीरा है। अगर उसको मालूम हो जाय कि ऐसा ही हीरा एक और किसी के पास है, तो उसको ख़रीदने के लिए वह पहले हीरे की अपेक्षा बहुत अधिक मूल्य देने को तैयार हो जायगा; क्योंकि अगर एक के

बजाय उसके पास दो इतने बड़े हीरे हो जायँ तो वह पहले की अपेक्षा बहुत बड़ा आदमी समझा जायगा। इसलिए दूसरे हीरे से उसको पहले हीरे की अपेक्षा अधिक उपयोगिता मिलेगी।

द्रव्य की सीमान्त-उपयोगिता—द्रव्य के विषय में भी सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास नियम लागू होता है। ज्यों-ज्यों कोई व्यक्ति धनवान् होता जाता है त्यों-त्यों उसके द्रव्य की उपयोगिता कम होती जाती है। उदाहरण के लिए एक ऐसे व्यक्ति को लीजिए जिसकी आमदनी ५०) रु० माहवार से १००) रु० माहवार हो गई है। जब तक उसकी आमदनी ५०) रु० माहवार थी तब तक वह तीन सेर घी माहवार ख़रीदता था, लेकिन जब उसकी आमदनी १००) रु० महीना हो गई तो वह उसी भाव पर महीने में ५ सेर ख़रीदने लगा। इससे प्रकट हो जाता है कि आमदनी बढ़ जाने से रुपये की सीमान्त उपयोगिता में कमी हो गयी है। इसके विपरीत जब आमदनी कम होती जाती है तो द्रव्य की सीमान्त-उपयोगिता बढ़ती जाती है। जब माह के आरम्भ में विद्यार्थियों के पास रुपये आते हैं तो पहले वे दिल खोलकर ख़र्च करते हैं, लेकिन जब माह के अन्त में रुपया ख़तम होने को आता है तो फिर वे सम्हलकर ख़र्च करते हैं। इसका कारण यही है कि माह के आरम्भ में अधिक रुपया होने से रुपये की सीमान्त-उपयोगिता कम होती है, और जैसे-जैसे रुपया कम होता जाता है बाक़ी रुपयों की सीमान्त-उपयोगिता बढ़ती

जाती है, यहाँ तक कि अन्तिम रुपये की उपयोगिता बहुत हो जाती है।

ग़रीब आदमी को द्रव्य की सीमान्त-उपयोगिता धनवान् आदमी से अधिक होती है। अगर एक आदमी की आमदनी २०) रु० महीना हो और दूसरे की १०००) रु० हो, तो ग़रीब आदमी के बीसवें रुपये की उपयोगिता अमीर आदमी के हज़ारहवें रुपये से बहुत अधिक होगी। इसलिये ग़रीब आदमी को बीसवाँ रुपया ख़र्च करने के लिए अधिक उपयोगिता की आवश्यकता होगी, बनिस्बत अमीर आदमी के हज़ारहवाँ रुपया ख़र्च करने के।

आय की उपयोगिता बहुत धीरे-धीरे घटती है। इसका कारण यह है कि द्रव्य एक ऐसी वस्तु है जिससे अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। इसलिये ज्यों-ज्यों आय मे वृद्धि हो और उससे उपभोग की नयी वस्तुएँ ख़रीदी जायँ त्यों-त्यों इस आय की वृद्धि से सीमान्त-उपयोगिता मे बहुत कम ह्रास होगा। द्रव्य को एक वस्तु मानने के बजाय उसको कई वस्तुओं का समुच्चय समझना चाहिये। अगले पृष्ठ पर दिये हुए कोष्ठक और रेखाचित्र में यह दिखलाया गया है कि द्रव्य की सीमान्त-उपयोगिता बहुत धीरे धीरे किस प्रकार कम होती है।

मासिक आय	सीमान्त उपयोगिता
४०) रुपया	१००
४५) ,,	९८
५०) ,,	९६
५५) ,,	९४
६०) ,,	९२
६५) ,,	९०
७०) ,,	८८
८०) ,,	८४
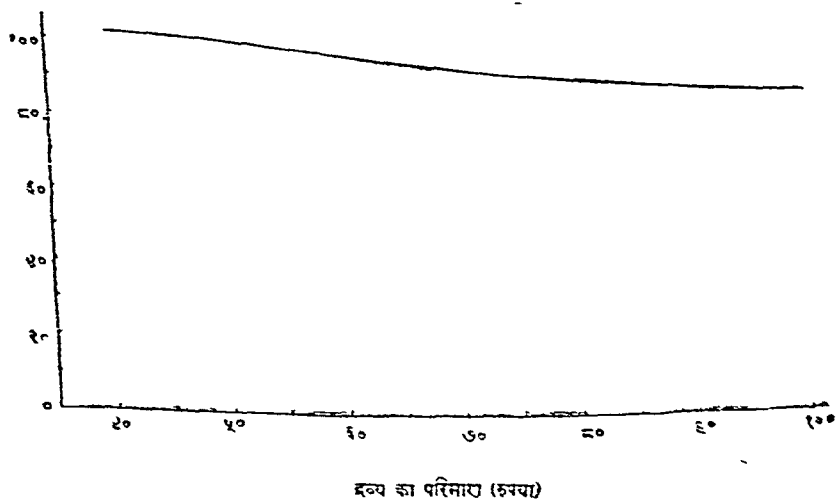
इस रेखा-चित्र में वक्र रेखा बहुत ही धीरे-धीरे नीची होती चली जा रही है। इससे यह मालूम होता है कि जैसे-जैसे उस मनुष्य

की मासिक आय बढ़ती गई वैसे-वैसे उस आय की सीमान्त-उपयोगिता धीरे-धीरे घटती गई।

सम-सीमांत-उपयोगिता नियम—प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि वह अपने द्रव्य को इस प्रकार ख़र्च करे कि उसको अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो। यही कारण है कि लोगों को प्रायः यह समस्या हल करनी पड़ती है कि कौन सी वस्तु किस समय और कितनी ख़रीदनी चाहिए। लोग अपने मन में एक वस्तु की उपयोगिता की तुलना दूसरे वस्तु की उपयोगिता से करते हैं और उस वस्तु को ख़रीदते हैं जिसकी उपयोगिता उनको सब से अधिक मालूम हो। अब चूँकि मनुष्य को विविध वस्तु की विविध संख्या में आवश्यकता होती है, और सीमांत-उपयोगिता-ह्रास-नियम के अनुसार प्रत्येक वस्तु को अधिक परिमाण में ख़रीदने से क्रमशः सीमांत-उपयोगिता कम होती जाती है, इसलिए साधारण मनुष्य को यह निश्चय करने में कठिनता प्राप्त होती है कि वह कौन-कौन सी वस्तु कितनी-कितनी ख़रीदे कि उसको अपने द्रव्य से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो। इसी बात का विवेचन अर्थशास्त्र मे सम-सीमांत-उपयोगिता-नियम में किया जाता है। इस नियम का मतलब यह है कि अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपभोक्ता अपनी आय को विविध वस्तुओं में इस प्रकार विभाजित करे कि उसको प्रत्येक वस्तु पर ख़र्च किये अन्तिम रुपये से क़रीब-क़रीब बराबर उपयोगिता प्राप्त हो। हमको अपने द्रव्य से अधिकतम-उपयोगिता तभी प्राप्त हो सकती है जब प्रत्येक वस्तु पर ख़र्च किये गये

अन्तिम सिक्के से समान सीमान्त उपयोगिता मिले। यह नियम आसानी से सिद्ध किया जा सकता है।

निम्नलिखित कोष्ठक में यह बतलाया गया है कि यदि कोई मनुष्य गेहूँ, चावल, कपड़ा और चीनी पर अपनी आय ख़र्च करे तो क्रमशः प्रत्येक रुपये से उसको कितनी उपयोगिता प्राप्त होगी।

रुपया	प्राप्त उपयोगिता			
	गेहूँ से	चावल से	कपड़े से	चीनी से
पहला ...	१००	८०	९०	६०
दूसरा ...	८०	६०	७०	४०
तीसरा ...	६०	४०	५०	३०
चौथा ..	५०	३०	३०	२०
पाँचवाँ ..	४०	२०	१७	१५
छठवाँ ..	३०	१५	१०	१०
सातवाँ ...	२०	१०	६	५
आठवाँ ...	१५	५	३	२
नवाँ ...	१०	३	२	१
दसवाँ ...	५	२	१	०

इस कोष्ठक से यह पता लगता है कि वह मनुष्य पहला रुपया गेहूँ पर ख़र्च करके १०० उपयोगिता प्राप्त करता है, दूसरा रुपया ख़र्च करने से उसे जो गेहूँ मिलता है उसकी उपयोगिता ८० है। यदि वह अपना रुपया चावल पर ख़र्च करता है तो

उसे ८० उपयोगिता मिलती है और दूसरा रुपया चावल पर ख़र्च करने से उसे ६० उपयोगिता प्राप्त होती है। मान लीजिए कि इस मनुष्य के पास ८ रुपये हैं और वह उन्हे उपर्युक्त चार वस्तुओं पर ख़र्च करना चाहता है। वह इन चार वस्तुओं पर इस प्रकार ख़र्च करेगा जिससे उसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो, इसलिए वह पहला रुपया गेहूँ पर ख़र्च करेगा, दूसरा रुपया वह कपड़े पर ख़र्च करेगा, परन्तु वह कपड़े पर ख़र्च किये जानेवाला प्रथम रुपया होगा और उससे उसे ९० उपयोगिता मिलेगी। तीसरा और चौथा रुपया वह गेहूँ और चावल पर ख़र्च करेगा, दोनों से उसे बराबर उपयोगिता प्राप्त होगी। वह पाँचवा रुपया कपड़े पर ख़र्च कर के ७० उपयोगिता प्राप्त करेगा। छठवाँ, साँतवाँ और आठवाँ रुपया वह गेहूँ, चावल और चीनी पर बराबर ख़र्च करके बराबर उपयोगिता प्राप्त करेगा। इस प्रकार रुपया ख़र्च करने पर उसे सब से अधिक उपयोगिता मिलेगी।

इस प्रकार अपने रुपये चारों वस्तुओं पर विभाजित करने से उसने प्रत्येक वस्तु पर ख़र्च किए हुए अंतिम रुपये से प्राप्त उपयोगिता क़रीब क़रीब बराबर कर ली। उसने गेहूँ पर ३ रुपया, चावल पर २ रुपया, कपड़े पर २ रुपया और चीनी पर १ रुपया ख़र्च किया। गेहूँ पर तीसरे रुपये ख़र्च करने से जो उपयोगिता प्राप्त हुई, वह ६० है। इसी प्रकार चावल, कपड़ा और चीनी पर अंतिम रुपया ख़र्च करने से प्राप्त उपयोगिता क्रमशः ६०, ७० और ६० है। इससे यह सिद्ध होता है कि उसने अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए

सम सीमान्त उपयोगिता नियम का पालन किया। वस्तुओं के ख़रीदने के लिए प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य इसी नियम का पालन करता है।

हम यह पहले बतला आये हैं कि रुपये की भी सीमान्त-उपयोगिता होती है और वह बहुत धीरे-धीरे घटती है। मान लीजिए कि उपर्युक्त उदाहरण में उस मनुष्य को रुपये की सीमान्त उपयोगिता ३० है तो वह मनुष्य गेहूँ पर ६ रुपये ख़र्च करने को तैयार हो जायगा; यदि वह सातवाँ रुपया ख़र्च करेगा तो उसके बदले में जो गेहूँ मिलेगा उसकी उपयोगिता केवल २० ही रहेगी। रुपये की उपयोगिता उसे ३० है इसलिए वह सातवाँ रुपया गेहूँ पर ख़र्च करने को राज़ी नहीं होगा। इसी प्रकार वह चावल पर चार रुपये, कपड़े पर चार रुपये और चीनी पर तीन रुपये ख़र्च करने को राज़ी होगा। इस तरह वह प्रत्येक वस्तु पर ख़र्च किये हुए अन्तिम रुपये से प्राप्त उपयोगिता को अपने रुपये की उपयोगिता के बराबर बनाकर सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम का पालन करेगा। पृष्ठ ३८ पर दिये हुए कोष्टक के उपयोगिता-सम्बन्धी अंकों को अगले पृष्ठ पर दिये हुए रेखा-चित्र में गेहूँ, चावल, कपड़ा, चीनी और द्रव्य की वक्ररेखाओं द्वारा दिखलाया गया है।
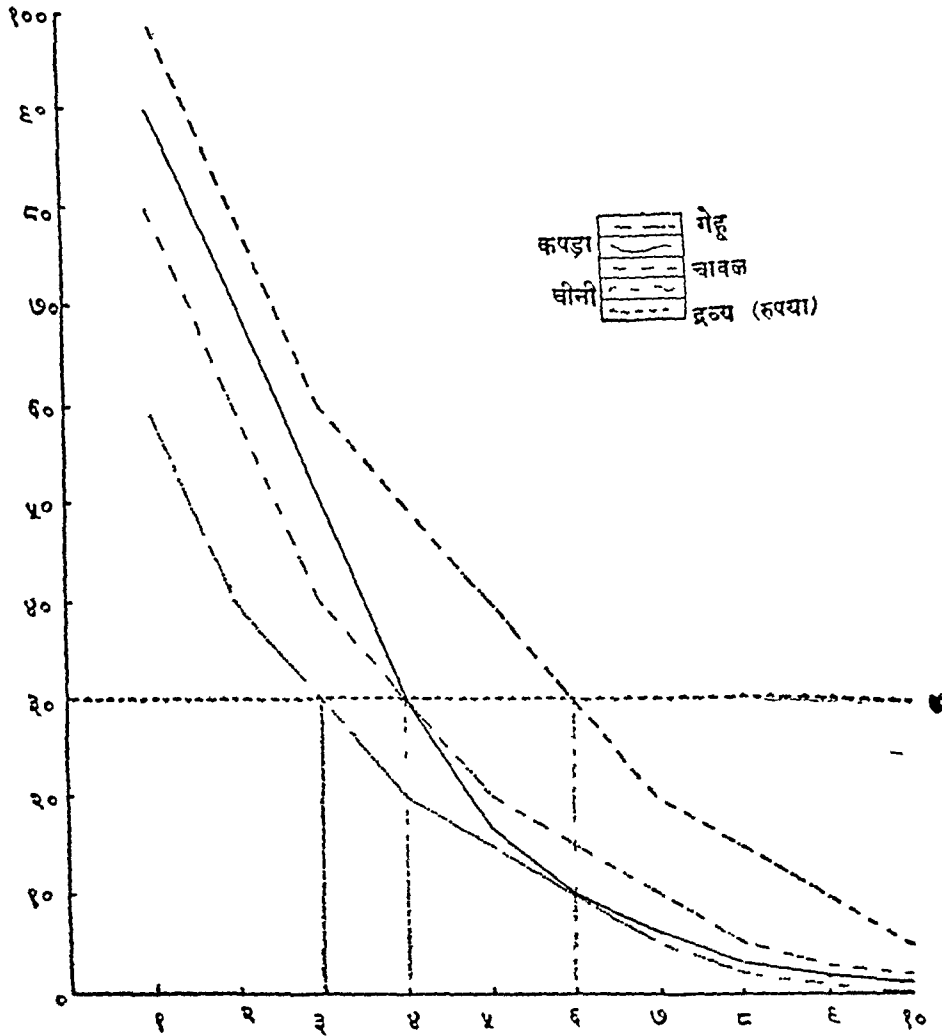
द्रव्य का परिमाण (रुपया)

इस रेखाचित्र से यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि वह मनुष्य प्रत्येक वस्तु पर कितने रुपये ख़र्च करेगा। जिस

बिन्दु पर द्रव्य की रेखा किसी वस्तु की रेखा पर मिलती है उसी बिन्दु से उस पर खर्च किये गए रुपये का परिमाण मालूम हो जाता है। इस रेखाचित्र से भी यही पता लगता है कि वह व्यक्ति चीनी पर तीन रुपये, चाँवल पर चार रुपये, कपड़े पर चार रुपये और गेहूँ पर ६ रुपये ख़र्च करेगा। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के उपयोगिता-सम्बन्धी अङ्क प्राप्त करके या रेखाएँ खींचकर यह बतलाया जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक वस्तु पर कितना रुपया किसी समय खर्च करेगा।

इस नियम से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जब कोई व्यक्ति आवश्यक वस्तुओं को ख़रीदने के लिए बाज़ार जाता है तो वह उन वस्तुओं के उपयोगिता की तालिका अपने साथ बनाकर ले जाता है या वह बाज़ार मे जाकर इसी प्रकार की कोई तालिका बनाता है। परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि वह इस नियम का उपयोग अवश्य करता है। खरीदते समय वह अपने मन में प्रत्येक वस्तु पर अन्तिम रुपया ख़र्च करके प्राप्त होनेवाली उपयोगिता की तुलना करता है और जब कभी दो वस्तुओं की इस प्रकार की उपयोगिता बिलकुल बराबर हो जाती है तब वह असमजस में पड जाता है और यह निश्चय नहीं कर पाता कि किसको ख़रीदा जाय और किसको न ख़रीदा जाय। यदि उसके पास उस समय दोनों को ख़रीदने के लिये काफी द्रव्य न हो तो ऐसी दशा मे समसीमान्त-उपयोगिता-नियम का पालन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इस नियम के सम्बन्ध मे हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति भविष्य के लिये कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम करना चाहता है। इसके लिए उसको अपनी वर्तमान आवश्यकताओं में काट-छाँट करके भविष्य के लिए द्रव्य का संरक्षण करना पड़ता है। उसको इस समय के आवश्यकीय पदार्थों की उपयोगिता की भविष्य में ख़रीदे जानेवाले पदार्थों की उपयोगिता से तुलना करनी पडती है जिससे वह भविष्य के लिये द्रव्य बचाकर रखे। लेकिन भविष्य के अनिश्चित होने के कारण मनुष्य को भविष्य में ख़रीदी जानेवाली वस्तुओं की उपयोगिता का अन्दाज़ लगाना बहुत मुश्किल होता है।

इस नियम मे समय का विशेष ख़्याल रखना पडता है। जिन वस्तुओं को ख़रीदने के लिए हम एक वस्तु की उपयोगिता को अन्य वस्तुओं की उपयोगिताओं से तुलना करते हैं—यह तुलनात्मक काम एक ही समय में होना चाहिये—समय के बदल जाने से उन वस्तुओं की उपयोगिताओं में भी भिन्नता आ सकती है। आज हमको पहले रुपये से गेहूँ ख़रीदने में सौ और कपड़ा ख़रीदने में ९० उपयोगिता मिलने से हम पहले रुपये से गेहूँ ख़रीद ले। लेकिन अगर हम वह रुपया आज ख़र्च न करके कल के ऊपर उठा रखें तो सम्भव है कि दूसरे दिन हमको प्रथम रुपया ख़र्च करने से गेहूँ से केवल ९० उपयोगिता ही प्राप्त हो और हम उस रुपये से कपड़ा ही ख़रीदें। इसलिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि जब हम समसीमान्त-उपयोगिता नियम के अनुसार ख़र्च करने के लिये वस्तुओं की उपयो-

गिताओं की तुलना करते हैं तो वह तुलना एक समय विशेष के लिए ही लागू हो सकती है। दूसरे समय के लिये हमको नये सिरे से तुलना करनी पडती है।

सूचना—राजस्व शास्त्र में सम-सीमांत उपयोगिता नियम का बहुत अधिक महत्व है। प्रत्येक सरकार को भिन्न-भिन्न मदों पर अपना ख़र्च इसी नियम के अनुसार करना आवश्यक होता है। इस पुस्तक के विषय से सरकारी ख़र्च का विशेष सम्बन्ध न होने के कारण उसका विवेचन यहाँ नहीं किया गया।

छठा अध्याय

माँग

इच्छा, आवश्यकता और माग इन तीन शब्दों का प्रयोग अर्थशास्त्र में भिन्न-भिन्न अर्थ में होता है, यद्यपि साधारण व्यवहार मे इन विशेषताओं पर कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया जाता।

इच्छा शब्द का विस्तार बहुत बड़ा है। आवश्यकता और माग इसके अन्तर्गत हैं। एक बच्चा बाज़ार मे बहुत-सी चीज़े देखता है और उनके लिए उसका जी ललचाता है। हम कहते हैं कि बच्चे को उन वस्तुओं को लेने की इच्छा है, लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि बच्चे को उन वस्तुओं की आवश्यकता है अथवा माँग है। आवश्यकता वह इच्छा है जिससे इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के हेतु मनुष्य प्रयत्न करने के लिए प्रेरित होता है, और उस वस्तु को प्राप्त करके उसकी तृप्ति होती है। जिस इच्छा को पूर्ण करने के लिए मनुष्य उद्योग करने को बाध्य नहीं होता वह केवल कोरी इच्छा पानी के बुलबुलों की तरह पैदा होती और नाश होती रहती है।

किसी वस्तु की माँग से इच्छित वस्तु के उस परिमाण का बोध होता है, जिसको कोई व्यक्ति. किसी खास समय में, किसी निश्चित क़ीमत पर खरीदने को तैयार हो। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि उपर्युक्त बच्चे को उसके पिता ने एक आना दिया। उसने बाज़ार जाकर नारंगियाँ देखीं। उसकी नारगी ख़रीदने की इच्छा हुई। पूछने पर उसे मालूम हुआ कि एक नारङ्गी की क़ीमत दो पैसा है। उस लड़के ने दो नारंगियाँ ख़रीद लीं। अब यहाँ पर हम कह सकते हैं कि लड़के को नारंगी की माँग थी और हम उस माग को इस प्रकार कहते हैं कि जब फ़ी नारंगी की क़ीमत दो पैसा है तो उस लड़के को उस समय, उस क़ीमत पर दो नारंगियों की माँग है। माँग और क़ीमत का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना क़ीमत के माँग हो ही नहीं सकती। अर्थशास्त्र के अनुसार हम नहीं कह सकते कि अमुक व्यक्ति को १०० नारङ्गियों की माँग है जब तक हम नारङ्गी की क़ीमत उसके साथ न जोड़े। हम कह सकते हैं, अगर नारगियों की दर दो रुपया सैकड़ा हो तो किसी व्यक्ति की माँग उस समय पाँच सौ है।

मांग का नियम—जब किसी वस्तु की क़ीमत घट जाती है तो उस वस्तु की माँग बढ जाती है, और जब उसकी क़ीमत बढ़ जाती है तो उसकी माँग घट जाती है, बशर्ते कि अन्य सब बाते पूर्ववत् रहें। माँग का घटना-बढना साधारणतः क़ीमत के क्रमशः बढ़ने-घटने पर निर्भर रहता है। जब दो पैसे में एक नारगी मिले

तो हम शायद दो नारंगी ख़रीदे, लेकिन एक पैसे की एक नारंगी मिलने पर हम चार ख़रीद लेंगे।

माँग का नियम सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास नियम और सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम से निकला है। जब हम किसी वस्तु को अधिक-से-अधिक परिमाण में ख़रीदते हैं तो क्रमशः उस वस्तु की उपयोगिता कम होती जाती है। पहली नारगी से दूसरी नारङ्गी की उपयोगिता कम होगी, तीसरी की दूसरी से कम हेगी और इस प्रकार दसवीं की बहुत ही कम होगी। इसलिए हम शायद पहली नारङ्गी के लिए एक आना देने को तैयार हो जायँ लेकिन दसवीं के लिए एक आना कभी नहीं देंगे। शायद जब दुकानदार एक पैसे मे एक नारंगी दे तो हम दस खरीद ले। जब वह दो पैसे की एक देगा तो हम शायद पाँच ही खरीदें। अब हम कह सकते हैं कि जब नारङ्गियों की क़ीमत एक आना फी नारङ्गी हो तो हमारी माँग एक नारङ्गी है, जब उसकी क़ीमत दो पैसा फी नारङ्गी हो तो हमारी माँग पाँच है और जब एक पैसा फी नारङ्गी हो तो हमारी माँग दस नारङ्गियाँ हैं। यहाँ पर स्पष्ट हो गया कि जैसे-जैसे नारङ्गियों की क़ीमत घटती गई वैसे-वैसे माँग बढ़ती गई।

अब हमे यह देखना है कि माँग के नियम का सम सीमान्त उपयोगिता नियम से क्या सम्बन्ध है। पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि अधिकतम तृप्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य इस प्रकार ख़र्च करता है जिससे प्रत्येक ख़रीदे गये पदार्थ पर ख़र्च

किए द्रव्य की अंतिम एकाई से प्राप्त उपयोगिता बराबर हो। जब हम दो वस्तुओं का परस्पर विनिमय करते हैं तो अदलाबदल तब बन्द हो जाता है, जब बदले में मिलनेवाली वस्तु की सीमान्त-उपयोगिता बदले में दिये जानेवाली वस्तु की सीमान्त-उपयोगिता से कम होने लगती है। यह आवश्यक है कि दोनों की उपयोगिता क़रीब-क़रीब बराबर हो। अगर हम एक फ़ाउन्टेन-पेन के बदले एक किताब लें तो हमारे लिए किताब की उपयोगिता फ़ाउन्टेन-पेन से अधिक, या कम-से-कम बराबर अवश्य होगी। इसी प्रकार जब हम एक आने में एक नारङ्गी ख़रीदते हैं तो उस नारङ्गी की उपयोगिता हमारे लिए कम-से-कम एक आने की उपयोगिता के बराबर अवश्य होनी चाहिए। अगर एक आने की उपयोगिता एक नारङ्गी की उपयोगिता से अधिक है तो कोई भी विचारवान मनुष्य इस दाम पर नारंगी न ख़रीदेगा। अगर एक नारंगी की उपयोगिता एक आने की उपयोगिता से अधिक हो तो कोई व्यक्ति तब तक नारंगियाँ ख़रीदेगा—अगर उसके पास ख़रीदने का द्रव्य होगा—जब तक नारङ्गियों की उपयोगिता (उपयोगिता-ह्रास-नियम के अनुसार) घटते-घटते एक आने की उपयोगिता के बराबर न हो जायगी अर्थात् वह व्यक्ति इतनी नारंगियाँ ख़रीदेगा जब तक नारङ्गियों की सीमान्त-उपयोगिता और एक आने की उपयोगिता सम न हो जायगी। यह बात पृष्ठ ४९ पर दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जायगी।

नारंगियाँ	नारंगियों पर ख़र्च किये गये प्रत्येक आने से प्राप्त उपयोगिता जब कि क़ीमत		
	एक आना फी नारगी है	दो पैसा फी नारंगी है	एक पैसा फ़ी नारंगी है
पहली	१००	१९०	
दूसरी	९०		
तीसरी	८०	१५०	२४०
चौथी	७०		
पाँचवीं	५५		
छठीं	४०	९५	
सातवीं	३०	५०	१४५
आठवीं	२०		
नवीं	१५		
दसवीं	१२	२७	
ग्यारहवीं	१०		४५
बारहवीं	८	१८	

इस कोष्ठक का मतलब इस प्रकार है।

किसी आदमी को पहली नारगी की उपयोगिता १००, दूसरी की ९०, और तीसरी की ८० इत्यादि है। वह सीमान्त-उपयोगिता ह्रास नियम के के अनुसार घटती जाती है। जब एक नारंगी की क़ीमत एक आना है तो नारगी पर खर्च किये गये पहले आने से प्राप्त उपयोगिता १००, दूसरे से ९०, तीसरे से ८० इत्यादि होती है। अब यदि नारंगी का भाव गिरकर दो पैसा फ़ी नारगी हो जाय तो एक

आने को दो नारंगियाँ मिलेंगीं। इसलिए इस भाव पर नारंगियों पर खर्च किये गए पहले आने से प्राप्त उपयोगिता १००+९० =१९०, दूसरे आने से प्राप्त उपयोगिता ८०+७०=१५० इत्यादि होगी। इसी प्रकार जब नारंगियों का भाव एक पैसा फ़ी नारंगी हो तो एक आने की चार नारंगियाँ आवेंगी और नारंगियों पर खर्च किये गये पहले आने से प्राप्त उपयोगिता १००+९०+८०+७० =३४० होगी।

हम पहले कह आये हैं कि द्रव्य की भी सीमान्त-उपयोगिता होती है। मान लीजिए कि उपर्युक्त व्यक्ति के अन्तिम आने की उपयोगिता १०० है। जब नारंगियाँ एक आने को एक बिकेंगी तो वह केवल एक नारङ्गी मोल लेगा। दूसरी नारंगी लेने से उसको (दूसरी नारंगी से) केवल ९० उपयोगिता मिलेगी और एक आने की १०० उपयोगिता देनी पड़ेगी। इससे उस आदमी को नुक़सान होगा और वह दूसरी नारंगी इस भाव पर नहीं ख़रीदेगा। अब जब नारंगियो की क़ीमत दो पैसा फ़ी नारंगी होगी तो वह दो आने की चार नारङ्गियाँ ख़रीदेगा। इसी प्रकार नारङ्गियों की क़ीमत एक पैसा हो जाने से वह आठ नारङ्गियाँ खरीदेगा। इससे यह प्रकट हो गया कि जैसे-जैसे नारङ्गियों की क़ीमत घटती गई वैसे-वैसे उनकी माग बढती गई। इसी कोष्ठक से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जब क़ीमत बढ़ती है तो माग घटती है। जब नारङ्गियों की क़ीमत एक पैसा फ़ी नारङ्गी थी तो माग ८ थी, जब क़ीमत बढ़ कर दो पैसा हो गई तो माग

घटकर ४ हो गई, और जब क़ीमत एक आना हुई तो मांग केवल एक रह गई।

मांग के नियम के ये शब्द "बशर्ते कि अन्य सब बातें पूर्ववत् रहें" बड़े महत्त्व के हैं। यह नियम किसी निश्चित समय और परिस्थिति पर निर्भर है। जैसे गर्मी के दिनों में नारङ्गी की उपयोगिता जाड़ों की अपेक्षा अधिक होती है। इसलिए यह मुमकिन है कि गर्मियों में एक आने फ़ी नारंगी के भाव पर हम दो या तीन नारंगियाँ ख़रीद लें और जाड़ों में इस भाव पर एक भी न ख़रीदें। जब किसी मनुष्य की आमदनी अचानक बढ़ जाती है तो द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता उसके लिये कम हो जाती है। यदि उपर्युक्त मनुष्य की द्रव्य की सीमान्त-उपयोगिता १०० से घटकर ४५ हो जाय तो वह ऊपर दिए गए कोष्ठक के अनुसार एक आने फ़ी नारङ्गी की क़ीमत पर ९ नारङ्गियें, दो पैसे क़ीमत पर ८ नारङ्गियें और एक पैसा क़ीमत पर १२ नारङ्गियें ख़रीदेगा।

मांग की सारिणी और मांग की रेखा

वस्तु के प्रत्येक काम के लिए भिन्न भिन्न माग की सारिणी होती है। नीचे एक मनुष्य की घी की मासिक माग की सारिणी का नमूना दिया जाता है।

क़ीमत	घी की मासिक माँग
५) प्रति सेर	२ सेर
३) ,,	४ ,,
२) ,,	६ ,,
१) ,,	१० ,,
॥) ,,	१२ ,,
।) ,,	१४ ,,

इस माग की सारिणी को जब रेखाचित्र द्वारा प्रकट किया जाता है तो उसको "माग का रेखाचित्र" कहते हैं। उपर्युक्त माग की सारिणी का रेखा-चित्र अगले पृष्ठ पर दिया जाता है।
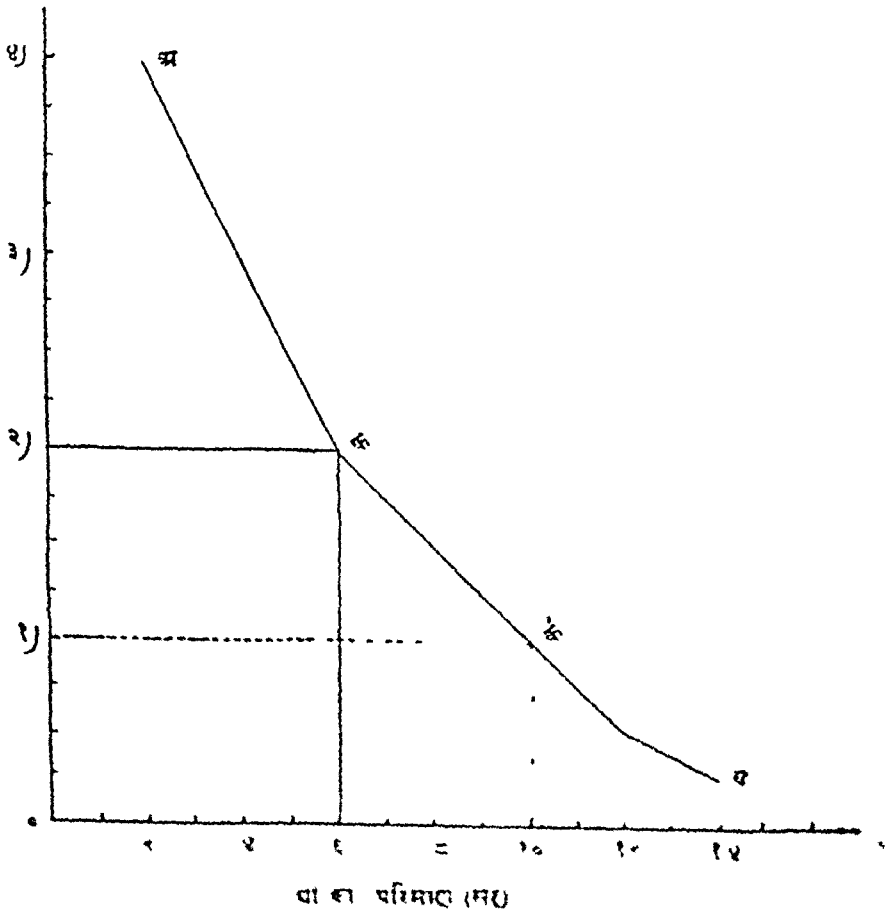
इस रेखा-चित्र में अ ब रेखा को मांग की रेखा कहते हैं। इस रेखा-चित्र से मालूम होता है कि जब घी की कीमत २) प्रति सेर थी तो उसकी मांग ६ सेर थी। जब घी की कीमत १) प्रति सेर हो गई तो उसकी मांग १० सेर तक बढ़ गई। मांग की इस वृद्धि को मांग का प्रसार कहते हैं। इससे मांग का नियम सिद्ध होता है।

समाज के मांग की सारिणी—अगर हम किसी समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की (किसी वस्तु की) माग की सारिणी का योग करें तो हमको उस जन-समुदाय की माग की सारिणी प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह बहुत मुश्किल काम है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की माग की सारिणी को प्राप्त करना मुमकिन नहीं है। इससे एक आसान तरीक़ा और है। वह इस प्रकार है:—

(१) समाज को वार्षिक आय के अनुसार भिन्न भिन्न भागों में विभाजित कीजिए। जैसे—२०) रु० से ५०) रु० मासिक आमदनी तक का प्रथम भाग इत्यादि।

(२) हर एक भाग में परिवारों की संख्या ढूंढ निकालिए।

(३) प्रत्येक भाग से एक औसत परिवार को छाँट निकालिए और इस औसत परिवार की किसी वस्तु की माग की सारिणी बना लीजिए।

(४) प्रत्येक भाग के औसत परिवार की माग की सारिणी को उस भाग के कुल परिवारो की सख्या से गुणाकर के प्रत्येक भाग के माग की सारिणी प्राप्त कर लीजिए।

(५) सब भागों की माग की सारिणी जोड़कर कुल समाज की माग की सारिणी बना लीजिए।

मान लीजिए कि किसी एक काल्पनिक समाज में २६००० व्यक्ति हैं जिनमें से अ हिस्से मे १०००, ब हिस्से में ५००० और

स हिस्से में २०,००० व्यक्ति हैं तो कुल समाज के घी की मासिक माँग की सारिणी इस प्रकार होगी:—

क़ीमत प्रति सेर	समाज की माँग (सेरों में)			
	अ	ब	स	कुल
१०)	१०००+	०+	०=	१०००
८)	२०००+	५०००+	०=	७,०००
६)	४०००+	१०,०००+	२०,०००=	३४,०००
५)	६०००+	१५,०००+	४०,०००=	६१,०००
४)	८०००+	२५,०००+	६०,०००=	९३,०००
३)	१०,०००+	३५,०००+	८०,०००=	१२५,०००
२)	१२,०००+	४०,०००+	१००,०००=	१५२,०००
१)	१५,०००+	५०,०००+	१२०,०००=	१८५,०००

कुल समुदाय की माँग की सारिणी का रेखाचित्र, प्रत्येक हिस्सों के रेखाचित्रों को जोड़कर बनाया जा सकता है, या वह जनसमुदाय की सारिणी के अङ्कों से भी उसी प्रकार बनाया जा सकता है जिस प्रकार एक मनुष्य की माँग की रेखा का चित्र बनाया जा चुका है।

माँग की प्रबलता और शिथिलता—जब हम किसी परिस्थिति के कारण उसी क़ीमत पर पहले की अपेक्षा अधिक परिमाण में उस वस्तु को ख़रीदते हैं या उससे अधिक क़ीमत पर उतनी ही या अधिक परिमाणों में उस वस्तु को ख़रीदते हैं

तो हमारी माँग उस वस्तु के लिए बढ़ जाती है। इस प्रकार से माँग के बढ़ने को माँग की प्रबलता कहते हैं। लेकिन जब क़ीमत कम होने से माँग बढ़े तो उसे माँग का प्रसार कहते हैं। जब कोई वस्तु फैशन में आ जाती है, या मनुष्य की आदत बदल जाने से किसी वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है तो उस वस्तु की माँग प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की आमदनी बढ़ जाने से भी किसी वस्तु की माँग का परिमाण उसी कीमत पर बढ़ जाता है। इसको भी माँग की प्रबलता कहते हैं। किसी वस्तु की माँग की प्रबलता उस वस्तु की क़ीमत बढ़ने का एक कारण होता है। परन्तु माँग का प्रसार क़ीमत के कम होने का फल है।

इसी प्रकार से इसके विपरीत माँग की शिथिलता किसी वस्तु के फ़ैशन के बाहर चले जाने या मनुष्य की आदत बदलने पर किसी वस्तु की उपयोगिता घट जाने या आमदनी में कमी हो जाने से होती है। ऐसी स्थिति मे कोई व्यक्ति उसी क़ीमत पर पहले की अपेक्षा कम खरीदता है या क़ीमत घट जाने पर भी उतनी ही या उससे कम परिमाण में उस वस्तु को ख़रीदता है। इसमें माँग की घटी से यह भिन्नता है कि माँग की घटी कीमत बढ़ने से होती है, लेकिन माँग की शिथिलता से क़ीमत में कमी होने की सम्भावना रहती है। अगले पृष्ठों पर दिये हुए रेखाचित्रों में माँग की प्रबलता और शिथिलता दिखलाई जाती है।
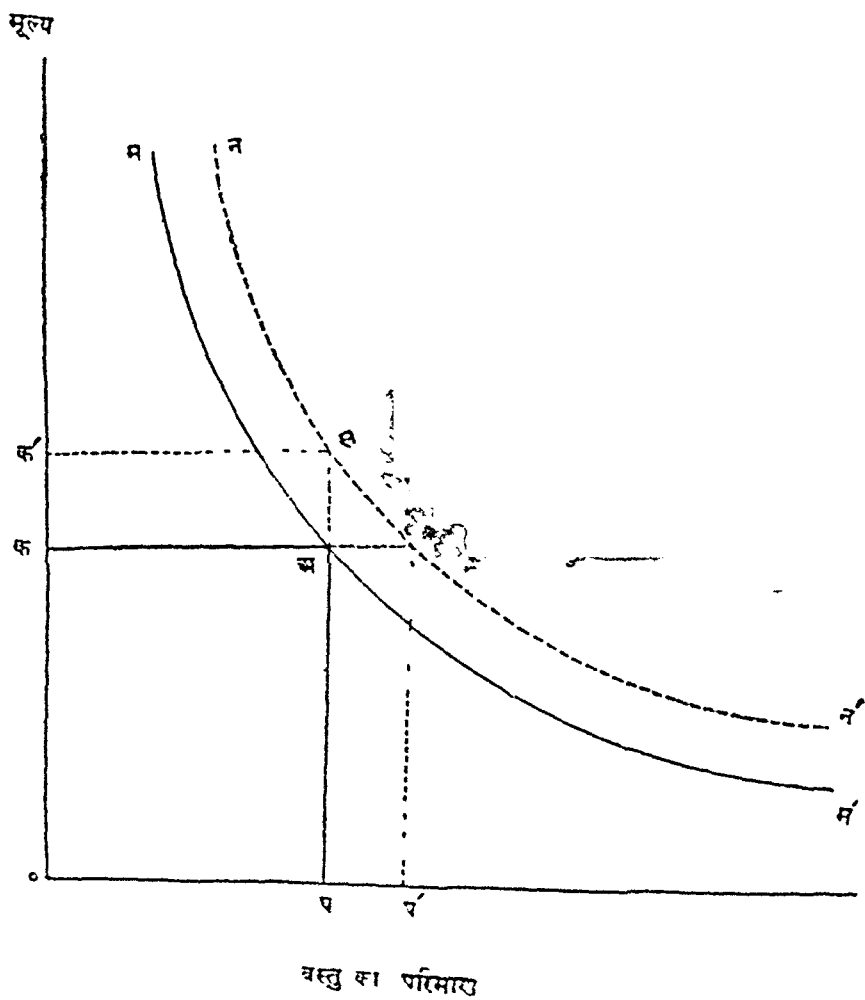
इस रेखाचित्र के अनुसार द्रव्य के बढ़ जाने या और किसी कारण से माँग की रेखा म म' से बदल कर न न' हो गई। यहाँ पर यह स्पष्ट है कि वह मनुष्य पहले ०क क़ीमत पर जिस वस्तु को ०प परिमाण में ख़रीदता था, अब उसी क़ीमत पर ०प' परिमाण में ख़रीदने लगता है। यह भी स्पष्ट है कि वह ०प परिमाण को

oक' पर अर्थात् पहले से अधिक क़ीमत पर ख़रीदता है। इसको माँग की प्रबलता कहते हैं।
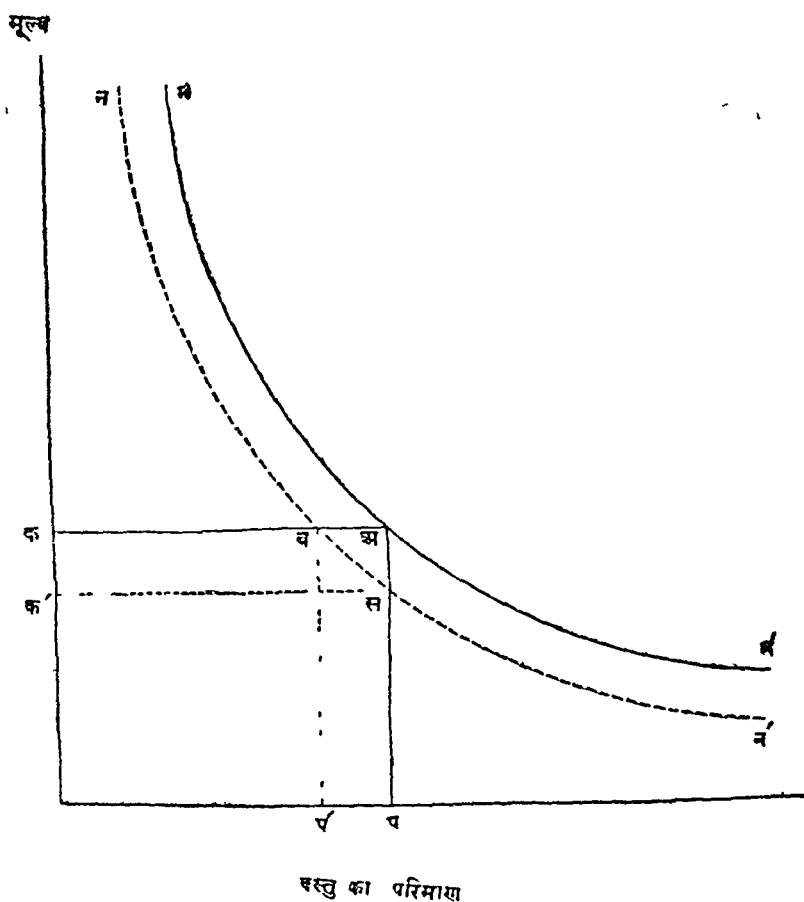
इसी प्रकार इस रेखाचित्र मे जब किसी कारण से उसकी माँग की रेखा म म' से बदल कर न न' हो जाती है तो वह पहली क़ीमत पर पहले से कम परिमाण में उस वस्तु को ख़रीदता है। अर्थात्

वह op के बदले केवल op' खरीदता है। और op परिमाण को पहले से कम क़ीमत ok' पर ख़रीदने को तैयार होता है। इसको माँग की शिथिलता कहते हैं। किसी मनुष्य की आमदनी कम हो जाने के कारण अथवा किसी वस्तु के फैशन से निकल जाने के कारण उसकी माँग शिथिल हो जाती है। वस्तु की माँग शिथिल हो जाने से उसका मूल्य कम हो जाता है और उसके उत्पत्ति के परिमाण मे भी कमी हो जाती है।

सातवाँ अध्याय

उपभोक्ता की बचत

पिछले अध्याय में यह सूचित किया जा चुका है कि बहुधा किसी वस्तु को ख़रीदने से हमको अधिक उपयोगिता मिलती है बनिस्बत उस वस्तु पर ख़र्च किये गये द्रव्य की उपयोगिता के। अर्थात् वस्तु को ख़रीदने से हम नफे में रहते हैं, हमें उपयोगिता में कुछ बचत होती है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से इस बचत का बहुत बड़ा महत्व है। इसलिये इस अध्याय में इसी विषय का विवेचन किया जाता है।

मान लीजिये कोई आदमी जङ्गल की राह जा रहा है। उसको बहुत भूख लगी है। उसकी भूख इतनी प्रबल है कि वह थोड़े से भोजन के लिए उसके पास जो कुछ है सब दे डालने को तैयार है। जाते जाते उसको एक आम का पेड़ मिलता है। वह एक आम तोड़कर खाता है। उससे उसको बहुत तृप्ति होती है। उस तृप्ति के बदले उसको आम तोड़ने में जो थोड़ा-सा श्रम हुआ वह कुछ भी नहीं मालूम होता है। इसके बाद वह दूसरा आम तोड़कर खाता है। उससे उसको पहले की अपेक्षा कुछ कम तृप्ति होती है और श्रम कुछ अधिक

मालूम देता है। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें आम से क्रमशः उसकी तृप्ति कम होती जाती है और उसको श्रम अधिक मालूम पड़ता है। यहाँ तक कि जब वह आठवाँ आम तोड़कर खा लेता है तो उसको बहुत कम तृप्ति होती है, और वह सोचने लगता है कि अब उसको नवाँ आम तोड़ने के लिए श्रम करना चाहिये या नहीं। उसको मालूम देता है कि नवें आम को खाने से उसको तृप्ति तो शायद कुछ हो भी या न हो लेकिन तोड़ने मे उसके थके हुए शरीर को कष्ट अवश्य बहुत अधिक होगा। इसलिये वह निश्चय करता है कि अब अधिक परिश्रम करने के बदले कुछ देर आराम कर लेना अधिक उपयोगी होगा।

अगर हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हमको मालूम हो जायगा कि पहला आम खाने से उसको बहुत अधिक तृप्ति हुई और बहुत कम श्रम, दूसरे से कुछ कम तृप्ति और कुछ अधिक श्रम हुआ इत्यादि। अब अगर हम आम खाने से उसकी वास्तविक तृप्ति का अन्दाज़ा करना चाहें तो हम प्रत्येक आम से प्राप्त की गई उपयोगिता (तृप्ति) में से उसको प्राप्त करने के लिये किये गये श्रम को घटाकर मालूम कर सकते हैं। जैसे, अगर पहले आम से उसको १०० उपयोगिता प्राप्त होती है और १० उपयोगिता के बराबर श्रम होता है तो उसको १००—१०=९० वास्तविक (Net) उपयोगिता मिलती है। यह उसके लिए एक प्रकार का लाभ अथवा बचत है। इसी बचत को अर्थशास्त्र मे "उपभोक्ता की बचत" कहते हैं।

आजकल हम लोग अपनी माँग की वस्तुओं को अधिकतर द्रव्य द्वारा ख़रीदते हैं। हम अपने श्रम को भी द्रव्य में प्रकट कर सकते हैं। कई एक लोगों को श्रम के बदले वेतन अथवा मज़दूरी के रूप में द्रव्य ही मिलता है। और लोग जो कुछ भी वस्तु बनाते हैं उसको बेचकर द्रव्य प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार हम उपयोगिता को भी द्रव्य का रूप दे सकते हैं। अगर हम पहले आम को प्राप्त करने के लिए एक रुपया दे देने को तैयार हों तो हमारे लिए पहले आम की उपयोगिता एक रुपये की उपयोगिता के बराबर हुई, और अगर दूसरे आम के लिए आठ आना दे देने को तैयार हों तो दूसरे आम की उपयोगिता हमारे लिए आठ आने की उपयोगिता के बराबर हुई।

इन बातों को दृष्टि में रखते हुए हम "उपभोक्ता की बचत" को द्रव्य में माप सकते हैं। मान लीजिए, हम किसी व्यक्ति की घी ख़रीदने से एक महीने की उपभोक्ता की बचत जानना चाहते हैं। जब घी का भाव ५) रु० सेर है तो मान लीजिये कि वह आदमी एक महीने के लिए एक सेर घी ख़रीदता है। जब घी का भाव ४) सेर हो जाय तो वह दो सेर ख़रीदने को तैयार हो जाता है, जब ३) रु० सेर हो तो तीन सेर, २) रु० सेर में चार सेर और १) रु० सेर पर पाँच सेर ख़रीदने को तैयार हो जाता है।

चूँकि जब घी का भाव ५) रु० सेर है, वह एक सेर घी ख़रीदने को तैयार रहता है, इसलिए यह बात तो प्रकट ही है कि इस

पहले सेर घी से उसको कम-से-कम उतनी तृप्ति तो होती ही है जितनी उन पाँच रुपयों से किसी अन्य पदार्थ को ख़रीदने में होती। जब घी का भाव ५) रु० सेर से ४) रु० सेर हो जाता है तो वह आदमी दो सेर घी ख़रीदता है। इस अवस्था में पहले सेर घी से उसको केवल ४) रु० में उतनी ही तृप्ति प्राप्त हो जाती है जिसके लिए वह पाँच रुपया ख़र्च करने को तैयार था। दूसरे सेर घी के लिये वह ४) रुपये देता है और उससे जो उपयोगिता प्राप्त होती है वह ४) रुपये की उपयोगिता के बराबर है। इस प्रकार जब वह चार रुपये प्रति सेर के भाव पर दो सेर घी ख़रीद लेता है तो उपभोक्ता की बचत एक रुपया हो जाती है; क्योंकि उसको पहिले सेर घी से कम से-कम ५) रु० के बराबर और दूसरे सेर से ४) रु० के बराबर तृप्ति मिलती है जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है; अर्थात् दो सेर घी से उसको कम से कम ९) रु० के बराबर तृप्ति मिलती है और वह दो सेर घी के लिए ४) रु० सेर के हिसाब से केवल ८) रु० दुकानदार को देता है। इसलिए उसको एक रुपये की उपभोक्ता की बचत हो जाती है।

अब जब घी का भाव ३) रु० सेर हो जाता है तो वह तीन सेर घी ख़रीदता है। उसको ५+४+३=१२) रु० के बराबर तृप्ति होती है और उसको ३) रु०×३=९ रु० उसके लिए देना पड़ता है अर्थात् उसको उपभोक्ता की बचत ३) रु० के बराबर होती है।

इसी प्रकार जब घी का भाव १) रु० सेर हो जाता है तो वह पाँच सेर घी ख़रीद लेता है। इन पाँच सेरों से उसको कम से कम ५+४+३+२+१=१५) रु० के बराबर तृप्ति मिलती है और पाँच सेर घी ख़रीदने के लिए १) रु० फी सेर के हिसाब से उसको ५) रु० ख़र्च करने पडते हैं। इसलिए उपभोक्ता की बचत १५) रु० −५)=१०) रु० के बराबर हो जाती है। अर्थात् ५) रु० घी में खर्च करने से उसको १०) रु० के बराबर अधिक तृप्ति हो जाती है। परन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उपभोक्ता की बचत तृप्ति की मात्रा की अधिकता ही बतलाती है। वास्तव में उपभोक्ता को द्रव्य में कुछ लाभ नहीं होता। हाँ, उपभोक्ता की बचत की वृद्धि से उसकी तृप्ति अवश्य बढ़ जाती है। हम किसी वस्तु को किसी परिमाण में प्राप्त करने के लिए जितना द्रव्य दे देने को तैयार हो सकते हैं, और जितना वस्तुतः हम देते हैं उनके अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं।

कई एक वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनसे हमको बहुत अधिक उपभोक्ता की बचत मिलती है। पोष्टकार्ड, अख़बार, नमक इत्यादि इनके उदारहण हैं। आवश्यकता पड़ने पर इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए हम उन दामों से कहीं अधिक द्रव्य देने को तैयार हो जावेंगे जिन दामों पर ये वस्तुएँ इस समय प्राप्त हो रही हैं। उपभोक्ता की बचत का परिमाण सामाजिक, राजकीय तथा आर्थिक परिस्थितियों पर अवलम्बित रहता है। जिन देशों मे इनकी उन्नति हो गई है उन देशों में डाकख़ाना, रेल, तार इत्यादि का महसूल कम हो गया है

और उपभोक्ता की बचत बढ़ गई है। जो देश कम सभ्य हैं वहाँ उपभोक्ता की बचत भी कम होती है।

उपभोक्ता की बचत मूल्य में आँकना उतना सरल नहीं है जितना कि ऊपर दिये हुए उदाहरण से मालूम होता है। इसको मालूम करने में बहुत-सी अड़चनें आ पड़ती हैं। पहले तो यही जानना बहुत मुश्किल है कि मनुष्य किसी वस्तु के लिए कितना तक दे देने को तैयार हो सकता है। एक भूखा मनुष्य अपने प्राणों की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व तक देने को तैयार हो जाता है। उसके लिए यह निश्चय करना कि पहिली रोटी की उपयोगिता १) रु० है या १००) रु० है एक बहुत कठिन समस्या है। उस रोटी की उपयोगिता उसके लिए असीम है। इस उपयोगिता को द्रव्य में आँकना मुमकिन नहीं है। जो वस्तुएँ प्राणों की रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक हैं उनसे उपभोक्ता की बचत द्रव्य मे निकालना एक प्रकार से असम्भव ही है। इसी प्रकार कुछ ऐसी कृत्रिम आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति किसी मनुष्य को समाज के भय से करनी पड़ती है। इनकी भी उपभोक्ता की बचत आँकना बहुत मुश्किल है।

किसी मनुष्य की किसी एक वस्तु को उपभोक्ता की बचत द्रव्य मे मापने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि उस वस्तु की माँग की सारिणी इस प्रकार से बनाई जाय कि हमको यह मालूम हो सके कि कितनी कीमत पर वह एक वस्तु ही खरीदेगा और कितनी क़ीमत पर दो वस्तु खरीदेगा परन्तु किसी वस्तु

की हम इस प्रकार की माँग की पूरी सारिणी नहीं बना सकते। हम यह नहीं जानते कि यदि पाँच रुपया सेर गेहूँ हो तो कोई व्यक्ति कितना गेहूँ प्रति मास ख़रीदेगा, क्योंकि गेहूँ की इतनी अधिक क़ीमत कभी भी नहीं रही। इसी प्रकार हम यह भी नहीं कह सकते कि यदि एक पैसे को पाँच सेर गेहूँ बिके तो कोई व्यक्ति कितना गेहूँ ख़रीदेगा क्योंकि गेहूँ की इतनी कम क़ीमत भी कभी नहीं रही। इसलिये हम किसी भी वस्तु की माँग की पूरी सारिणी नहीं बना सकते। इसी कारण उपभोक्ता की बचत को द्रव्य में सही आँकना मुश्किल हो जाता है।

उपभोक्ता की बचत मापने के लिये हमको यह बात मान लेनी पड़ती है कि उपभोक्ता अपने द्रव्य का एक छोटा अंश किसी एक वस्तु पर ख़र्च करता है। क्योंकि अगर कोई अपनी आमदनी का एक बहुत बड़ा अंश किसी एक वस्तु पर ख़र्च कर दे तो उसके द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता में बहुत अधिक बदलाव हो जाता है जिससे किसी वस्तु पर ख़र्च किये द्रव्य की उपयोगिता जान लेना कठिन हो जाता है, इसलिये उपभोक्ता की बचत का अन्दाज़ा लगाना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। अगर हम किसी एक वस्तु पर अपने कुल द्रव्य का एक छोटा सा अंश ख़र्च करे तो उससे द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता में अधिक बदलाव नहीं होता, और उपभोक्ता की बचत मापने में भी कुछ सुगमता हो जाती है।

अगर हम समाज की उपभोक्ता की बचत मापना चाहें तो

हमको यह मान लेना पड़ता है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों को बराबर द्रव्य से समान तृप्ति मिलती है। परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव, आचरण और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण समान द्रव्य से एक सी तृप्ति नहीं मिलती है।

उपभोक्ता की बचत का अन्तर

यद्यपि हम किसी मनुष्य को किसी वस्तु से प्राप्त हुए पूर्ण उपभोक्ता की बचत को ठीक-ठीक नहीं माप सकते, क्योंकि उसकी पूरी माँग की सारिणी बनाना मुमकिन नहीं है, फिर भी हम यह जान सकते हैं कि किसी वस्तु की क़ीमत के घटने अथवा बढ़ने से उपभोक्ता की बचत मे क्या फर्क पड़ जाता है। नीचे के कोष्ठक मे किसी मनुष्य की चावल की माँग की सारिणी दी जाती है।

मूल्य	(चावल की माँग)
५) रु० प्रति मन	२० मन
४॥) ,, ,, ,,	२१ ,,
४) ,, ,, ,,	२२ ,,

इस कोष्ठक से हमको यह मालूम नहीं होता कि पहले मन, दूसरे मन, तीसरे मन चावल के लिये वह मनुष्य कितना रुपया दे सकता था। इसलिये हम यह नहीं कह सकते कि २०

मन चावल के लिए वह मनुष्य कितना रुपया दे देता बनिस्बत इसके कि वह उससे वंचित रहता। मान लीजिये कि वह 'क' के बराबर रुपया २० मन चावल ख़रीदने के लिये दे देता। चावल का मूल्य जब ५) रु० फी मन है तब वह २०×५=१०० रु० ख़र्च करता है। इसलिये ५) रु० फी मन मूल्य पर उपभोक्ता की बचत क−१०० रु० होती है।

जब मूल्य घट कर ४॥) रु० प्रति मन हो जाता है तो वह २१ मन चावल खरीद लेता है। इस मूल्य पर उसका कुल खर्च ९४॥) रु० के बराबर है। इस मूल्य पर उसने १ मन अधिक चावल ख़रीदा है इसलिए उसको इस २१वे मन से कम-से-कम ४॥) रु० के बराबर उपयोगिता अवश्य मिली होगी। इसलिए ४॥) रु० फी मन मूल्य पर उपभोक्ता की बचत=क+४॥) रु०−९४॥) होती है। इसलिए जब मूल्य ५) रु० से ४॥) रु० मन हो गया तो उपभोक्ता की बचत का अन्तर [क+४॥)−९४॥)]−[क−१००)]=१० रु० हो जाता है।

अब हम यह कह सकते हैं कि जब चावल का मूल्य ५) रु० मन से घट कर ४॥) रु० मन हो जाता है तो उस मनुष्य की उपभोक्ता की बचत का अन्तर १०) रु० के बराबर हो जाता है।

इसी प्रकार जब चावल का मूल्य ४) रु० मन हो जाता है तो उस पर कुल ख़र्च २२×४=८८ रु० होता है। हम यह जानते हैं कि २१वे मन चावल पर वह मनुष्य कम-से-कम ४॥) रु० और २२वें मन चावल पर ४) ख़र्च करने को तैयार है। इस प्रकार

वह २१ मन चावल पर क+४॥)+४) ख़र्च कर सकता है, परन्तु वास्तव में वह ८८) ही ख़र्च करता है। इसलिए ४) रु० फ़ी मन मूल्य पर उपभोक्ता की बचत क+४॥)+४)−८८ रु० होती है।

इसलिए जब मूल्य ५) रु० फी मन से घटकर ४) रु० फ़ी मन हो जाती है तो उपभोक्ता की बचत का अन्तर [क+४॥)+४)−८८)]−[क−१००)]=२०॥) हो जाता है।

और जब मूल्य ४॥) रु० फ़ी मन से घट कर ४) रु० फी मन होता है तो उपभोक्ता की बचत का अन्तर

[क+४॥)+४)−८८]−[क+४॥)−१४॥)]=१०॥) हो जाता है।

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि जब चावल का मूल्य ४) रु० मन से ५) रु० मन हो जाय तो उपभोक्ता की बचत में २०॥) रु० हानि होती है।

उपभोक्ता की बचत का परिमाण तथा वस्तु की क़ीमत के घटने बढने से उपभोक्ता की बचत का अन्तर रेखाचित्र द्वारा भी बतलाया जा सकता है। नीचे दिये हुए रेखाचित्र में रेखा म म'
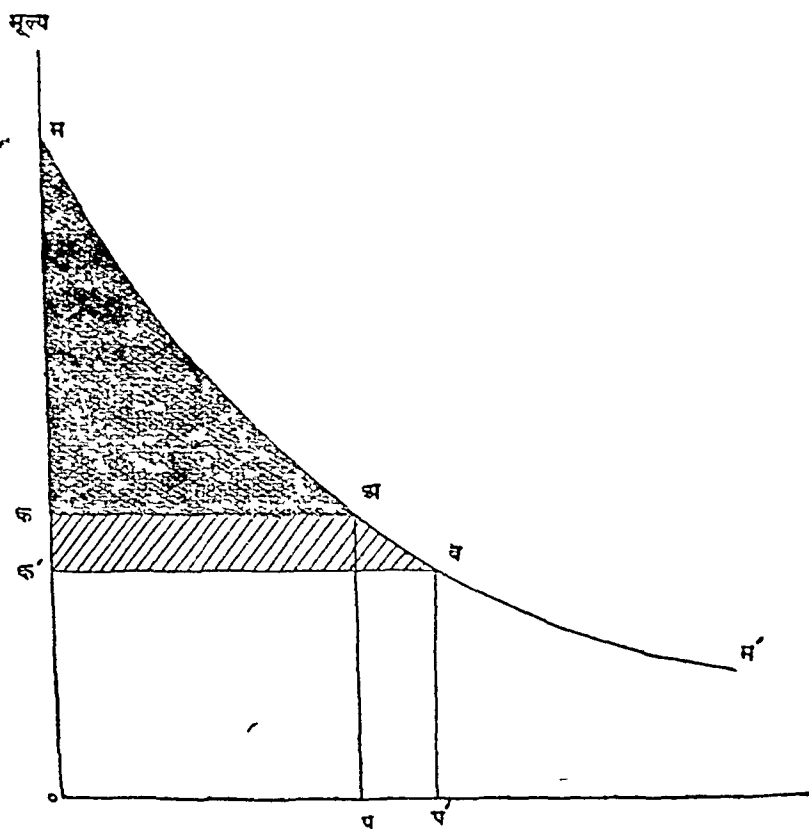
वस्तु का परिमाण

से किसी मनुष्य की किसी वस्तु की माँग मालूम होती है। जब उस वस्तु की क़ीमत oक रहती है तो वह oप परिणाम ख़रीदता है उस समय उसको जो उपभोक्ता की बचत होती है वह क्षेत्रफल

म क अ के बराबर है। जब उस वस्तु की क़ीमत ०क से ०क′ तक कम हो जाती है तो उस वस्तु की माँग का परिमाण ०प′ तक बढ़ जाता है। इस क़ीमत पर उपभोक्ता की बचत म क′ व क्षेत्रफल के बराबर होती है। इस वस्तु की क़ीमत ०क से ०क′ कम होने पर उपभोक्ता की बचत मे जो अन्तर होता है अर्थात् जो वृद्धि होती है वह क्षेत्रफल क क′ व अ के बराबर है। इसी प्रकार किसी वस्तु की माँग की रेखा प्राप्त होने पर उसकी किसी भी क़ीमत पर उपभोक्ता की बचत का परिमाण या क़ीमत में घट बढ होने पर उपभोक्ता की बचत का अन्तर आसानी से निकाला जा सकता है।

उपभोक्ता की बचत का महत्व

अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का बहुत महत्व है। यदि हम वस्तुओं के मूल्य के घट बढ़ का उपभोक्ताओं पर प्रभाव जानना चाहते हों तो हमें उपभोक्ता की बचत के अन्तर का अन्दाज़ा लगाना पड़ता है। वस्तुओं के मूल्य में घट बढ़ कई कारणों से होती है। कभी-कभी सरकार द्वारा वस्तुओं पर आयात-निर्यात कर अथवा उत्पत्ति कर लगा दिए जाते हैं। इससे उन वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाता है। इस प्रकार के कर लगाने से उपभोक्ताओं को कितनी हानि हुई इसका अन्दाज़ा लगाने के लिए उपभोक्ता की बचत के अन्तर का अन्दाज़ा लगाया जाता है। प्रत्येक अर्थ सचिव को वस्तुओं पर कर इस प्रकार से लगाना चाहिए जिससे कर के रूप में आमदनी तो अधिक-से अधिक हो और

उपभोक्ताओं की बचत मे कमी कम से कम हो। कभी-कभी देश में द्रव्य के परिमाण की वृद्धि होने से अथवा अत्यधिक कागजी मुद्रा के प्रचार से प्रायः सब वस्तुओं के मूल्य मे वृद्धि हो जाती है। इस मूल्य वृद्धि का उपभोक्ताओं पर प्रभाव का अन्दाज़ा लगाने के लिए भी उपभोक्ता की बचत के अन्तर का अन्दाज़ा लगाया जाता है।

उपभोक्ता की बचत से हमको यह भी मालूम हो सकता है कि कोई भी मनुष्य अपनी परिस्थितियों से कितना लाभ या हानि उठा रहा है। जब हम किसी मनुष्य की एक समय से दूसरे समय की अथवा किसी एक दर्जे के मनुष्यों की दूसरे मुल्क में उसी दर्जे के मनुष्यों की आर्थिक अवस्था की तुलना करे तो हमको उपभोक्ता की बचत पर भी उचित ध्यान देना चाहिए। अगर और चीज़ें समान रहें, और किसी मनुष्य को एक समय से दूसरे समय में अधिक उपभोक्ता की बचत हो तो दूसरे समय उसकी आर्थिक अवस्था पहले समय से अच्छी समझी जावेगी।

आठवाँ अध्याय

उपभोग की वस्तुओं का विभाग

संसार में सब से पहले मनुष्य को अपने शरीर को बनाये रखने की फ़िक्र रहती है। अंधा, अपाहिज कैसा ही मनुष्य क्यों न हो वह अपने चर्म-अस्थि-पिञ्जर शरीर को नाश होने से बचाने का सदा प्रयत्न किया करता है। इसलिए उपभोग के पदार्थों में मुख्य स्थान उन पदार्थों को दिया जाता है जो शरीर और प्राण को साथ रखने के लिये जरूरी होते हैं। इन पदार्थों को जीवन-रक्षक पदार्थ कहते हैं। इन पदार्थों में जल, अन्न, वस्त्र, मकान इत्यादि शामिल हैं। लेकिन केवल जीवन-रक्षा के लिए ये पदार्थ साधारण दर्जे के हो सकते हैं, जिनसे किसी मनुष्य का निर्वाह मात्र हो सके। जीवन रक्षक पदार्थों की क़ीमत बढ़ जावे या घट जावे लेकिन शरीर की रक्षा के लिए इन वस्तुओं को ख़रीदना अनिवार्य होता है। इसलिये जैसे-जैसे जीवन-रक्षक पदार्थों की क़ीमत बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उन पर किया गया कुल ख़र्च बढ़ता जाता है क्योंकि माँग उस अनुपात में कम नहीं होती है।

दूसरे प्रकार के उपभोग के पदार्थ निपुणता-दायक पदार्थ कहलाते हैं। ये वे पदार्थ हैं जिनके सेवन करने से मनुष्य की

कार्य करने की शक्ति बढती है। उससे शरीर में बल उत्साह और स्फूर्ति पैदा होती है। शरीर निरोग रहता है। जीवन-रक्षक पदार्थों में भी ये गुण रहते हैं। परन्तु उनका वर्गीकरण अलग कर देने से निपुणता-दायक पदार्थों में जीवन रक्षक पदार्थ सम्मिलित नहीं किये जाते। कुछ जीवन-रक्षक पदार्थ अधिक मात्रा में और अच्छे दरजे के होने पर निपुणता-दायक पदार्थ कहलाने लगते हैं। जैसे साधारण भोजन करने से, फटा पुराना कपड़ा पहनने से तथा टूटी फूटी झोपड़ी में रहने से भी मनुष्य जिन्दा तो रह सकेगा, लेकिन उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं रहेगी। शरीर रोगी और निर्बल हो जावेगा, और काम करने की शक्ति क्षीण होती जावेगी। लेकिन अगर उसको भरपेट पुष्टिकारक भोजन दिया जावे, जैसे अच्छा अन्न, घी, दूध, फल इत्यादि और स्वच्छ वस्त्र पहनेने को दिये जाये, रहने के लिए अच्छा हवादार मकान दिया जावे, व्यायाम, खेल, पुस्तकालय इत्यादि का उसके लिये प्रबन्ध किया जाय तो वह पुरुष हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, निपुण और तन्दुरुस्त होगा। काम करने के लिए बल और उत्साह बढेगा इसलिए उसका काम भी अच्छा होगा। निपुणता-दायक पदार्थों में जितना खर्च किया जाता है उसका फल उससे कहीं अधिक मिलता है। क़ीमत के बढ़ने पर निपुणता दायक पदार्थों की माँग में भी अधिक कमी नहीं होगी इसलिये इन पदार्थों पर भी, जीवन-रक्षक पदार्थों के समान ख़र्च बढ़ता जाता है जैसे-जैसे इनके मूल्य में वृद्धि होती है।

उपभोग के पदार्थों के तीसरे विभाग में आराम की वतुएँ

ली जाती है। इन वस्तुओं के उपभोग से शरीर को सुख और आराम तो मिलता है और निपुणता भी बढ़ती है, लेकिन जितना ख़र्च इन पर किया जाता है उस अनुपात में उससे कार्य-कुशलता नहीं बढ़ती है। जैसे किसी गरीब मनुष्य के लिए धोती, कुर्ता और चप्पल निपुणता-दायक पदार्थ हैं लेकिन अगर वह बढ़िया कमीज़, कोट का उपयोग करे तो ये वस्तुएँ उसके लिए आराम की वस्तुएँ कहीं जावेंगी। इनसे उनकी निपुणता भले ही बढ़े लेकिन उतनी नहीं बढ़ेगी जितना इसमें ख़र्च हो जायेगा। इसी प्रकार से गरीब किसान के लिए साइकिल, घड़ी, पक्का मकान, इत्यादि भी आराम की वस्तुओं में शामिल किये जा सकते हैं।

चौथे प्रकार की उपभोग की वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ कहलाती हैं। इन वस्तुओं के सेवन करने से इन पर किये गये ख़र्च की अपेक्षा इनसे बहुत कम निपुणता अथवा कार्य कुशलता प्राप्त होती है। कभी-कभी तो इन वस्तुओं के उपभोग से कार्य-कुशलता के बढ़ने की अपेक्षा ह्रास होने लगता है। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण हैं खूब बढ़िया आलीशान अट्टालिकायें, बहुत क़ीमती भड़कीले वस्त्र, शराब इत्यादि। विलासिता की वस्तुओं को सेवन करने से शरीर आलसी सा हो जाता है। काम करने को जी नहीं करता है। शराब इत्यादि के सेवन से तो मनुष्य की कार्य-कुशलता बिलकुल क्षीण होने की सम्भावना रहती है। विलासिता की वस्तुओं की क़ीमत में थोड़ा सा बदलाव होने से ही इनकी माँग में बहुत बदलाव हो जाता है। इसलिए जैसे-जैसे इनकी क़ीमत बढ़ती है वैसे ही इन पर कुल ख़र्च

घटता जाता है।

उपभोग के पदार्थों का एक और विभाग है। इस विभाग में वे वस्तुएँ हैं जो कि जीवन-रक्षा अथवा आराम इत्यादि के लिए आवश्यक नहीं हैं, लेकिन समाज के दबाव से लोक-निन्दा के भय से अथवा रीति-रस्म, आचार व्यवहार तथा आदत पड जाने के कारण ये वस्तुएँ भी आवश्यक होने लगती हैं। इन वस्तुओं को "कृत्रिम आवश्यकताओं की वस्तुएँ" कहते हैं। जन्मोत्सव, विवाह इत्यादि उत्सवों में ख़र्च, तथा शराब, तम्बाकू, गाँजा, चरस इत्यादि पर खर्च। चूँकि इन वस्तुओं की क़ीमत बढ़ जाने अथवा घट जाने से भी ये वस्तुएँ करीब-करीब उसी परिमाण में खरीदी जाती हैं, इसीलिए क़ीमत के बढ़ने पर इन पर होने वाला ख़र्च भी बढ़ जाता है।

यह बात ध्यान में रखने के योग्य है कि उपभोग की वस्तुओं के ये विभाग एक दूसरे से बिलकुल भिन्न नहीं हैं। वास्तव मे इनका वर्गीकरण उपभोक्ताओं की परिस्थितियों के अनुसार समझा जाता है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि अमुक वस्तुएँ सब के लिए सदा जीवन-रक्षक पदार्थ हैं, और कुछ वस्तुएँ विलासिता की अथवा आराम की वस्तुएँ हैं इत्यादि। कोई भी वस्तु अपने आप से किसी भी वर्ग में शामिल नहीं को जा सकती है। किसी वस्तु को कौन से वर्ग में रखा जाये इस बात को जानने के लिए हमको बहुत सी और बातें भी ध्यान में रखनी

पड़ती हैं। मनुष्य की प्रकृति, आदत, फ़ैशन, जल-वायु, देश काल, वस्तुओं की क़ीमत तथा मनुष्यों की आर्थिक अवस्था से वस्तुओं के वर्गीकरण में भिन्नता आ जाती है।

कई वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो कि वस्तुतः विलासिता की वस्तुएँ अथवा आराम की वस्तुएँ हैं, लेकिन उनका बार-बार उपभोग करने से उन वस्तुओं के उपभोग की आदत पड़ जाती है। इसलिए वे कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं में गिनी जाने लगती हैं। उदाहरणार्थ चाय अथवा तम्बाकू को लीजिये। जिन लोगों को इन वस्तुओं का व्यसन पड़ जाता है उनसे अगर उनके सम्बन्ध में पूछा जाय तो वे कहते हैं कि उन वस्तुओं को सेवन किये बिना वे जी नहीं सकते हैं। भोजन ठीक वक्त पर मिले न मिले इसकी परवाह नहीं लेकिन तम्बाकू, शराब इत्यादि उनको अवश्य मिलनी चाहिए। कई मनुष्यों की शारीरिक अवस्था ऐसी होती है कि एक वस्तु जो दूसरे मनुष्य को नुक़सान पहुँचाती है, उनको लाभदायक होती है।

एक डाक्टर के लिए मोटरकार आवश्यक प्रतीत होती है क्योंकि उसकी सहायता से वह कम समय में बहुत से मरीज़ों को देख सकता है, लेकिन यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर के लिए मोटरकार आराम या विलासिता की ही वस्तु समझी जावेगी।

एक अमीर आदमी के लिए आलीशान महल, बिजली का लैम्प, पङ्खे इत्यादि आराम की वस्तुएँ हों लेकिन एक ग़रीब किसान के लिए ये वस्तुएँ एकदम बिलासिता की वस्तुएँ समझी

जावेगी।

समय के बदलाव से, फैशन के बदलाव से तथा रहन-सहन के दर्जे के बदलाव से कोई वस्तु एक समय विलासिता की वस्तु, दूसरे समय आराम की वस्तु और किसी समय जीवन-रक्षक वस्तु भी समझी जाती है।

किसी वस्तु की क़ीमत के घटने-बढ़ने से भी उस वस्तु के वर्गीकरण में भिन्नता आ जाती है। अगर कोई कपड़ा ६) रु० गज़ के हिसाब से बिकता हो तो वह किसी मनुष्य के लिये विलासिता की वस्तु समझी जाती है, अगर ३) रु० गज़ हो जाय तो आराम की वस्तु, १) रु० गज़ में निपुणता-दायक वस्तु तथा ।।) आना गज़ में जीवन-रक्षक वस्तु समझी जा सकती है।

रेखाचित्र द्वारा वस्तुओं का भेद

अगले पृष्ठ पर दिये हुए रेखाचित्र में तीन वस्तुओं की माँग की रेखाएँ दी गई है। न न' रेखा -आवश्यक वस्तु की माँग की रेखा है। भ भ' रेखा से आराम की वस्तु तथा म म' रेखा से विलासिता की वस्तु की माँग मालूम होती है। इस रेखाचित्र में यह दिखलाया गया है कि जब तीनों वस्तुओं की कीमत ०क से ०क' तक बढ़ती है तो प्रत्येक वस्तु की माँग मे कितनी कमी होती है। आवश्यक वस्तु की माँग में कमी उ उ', आराम की वस्तु की माँग में कमीं ऊ ऊ' और विलासिता की वस्तु की माँग से कमी प प' है। इस चित्र से पता लगता है कि परिमाण उ उ' सब से
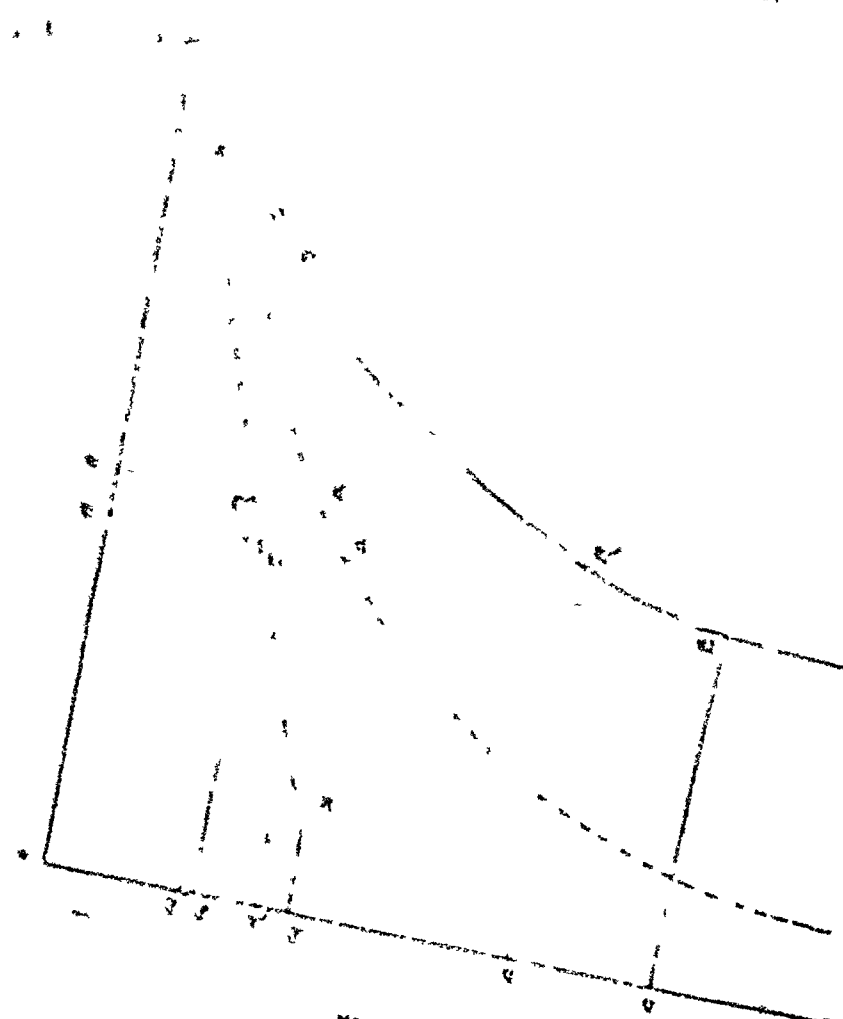
वस्तु का परिमाण

कख और ग ए सब से अधिक है इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुओं की कीमत वृद्धि होने से विलासिता की वस्तुओं की माँग में सबसे अधिक कमी और आवश्यक वस्तुओं की माँग में सब से कम कमी होता है।

नवाँ अध्याय

माँग की लोच

माँग के नियम के सम्बन्ध में हम बतला चुके हैं कि साधारणतः जब किसी वस्तु की क़ीमत घट जाती है तो उसकी माँग बढ़ जाती है, और जब उसकी क़ीमत बढ जाती है तो उसकी माँग घट जाती है अर्थात् क़ीमत में कुछ बदलाव होने से माँग में भी बदलाव हो जाता है, यह माँग का एक गुण है। माँग के इस गुण को अर्थशास्त्र मे "माँग की लोच" कहते हैं। जब क़ीमत में थोड़ा-सा बदलाव होने से—क़ीमत के कुछ बढ़ने से अथवा कुछ घटने से—किसी वस्तु की माँग में अधिक बदलाव हो जाता है—माँग अधिक घट जाती अथवा बढ़ जाती है—तो उस वस्तु की माँग लोचदार कही जाती है।

उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार ज्यों-ज्यों किसी वस्तु का अधिक-अधिक सग्रह हमारे पास होता जाता है त्यों-त्यों—अगर और सब बाते पूर्ववत् रहें—उस वस्तु की चाह कम होती जाती है। कई वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका अधिक संग्रह होने पर चाह बडी तेज़ी से कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में अगर उस वस्तु की क़ीमत कुछ घट जाय तो उसकी माँग में बहुत कम

वृद्धि होगी। इसके विपरीत अगर उस वस्तु की क़ीमत बढ़ जाय तो भी माँग में कुछ अधिक क्षति न होगी। इस वस्तु के लिए हम कह सकते हैं कि इसकी माँग में लोच कम है। लेकिन अगर किसी वस्तु की चाह बहुत धीरे-धीरे कम होती जावे तो उस वस्तु की क़ीमत थोड़ी सी घट जाने पर उसकी माँग बहुत बढ़ जावेगी; और क़ीमत के थोड़ा बढ़ जाने पर माँग भी बहुत कम हो जावेगी। ऐसी अवस्था में हम कह सकते हैं कि उस वस्तु की माँग में लोच अधिक है।

जब कि क़ीमत में कुछ बदलाव होने से माँग में बहुत बदलाव—अधिक वृद्धि अथवा अधिक क्षति—हो जाता है तो माँग अधिक लोचदार कही जाती है। परन्तु जब क़ीमत में थोड़ा सा बदलाव होने पर माँग में कम बदलाव—कम वृद्धि अथवा कम क्षति—होता है तो माँग कम लोचदार कही जाती है।

माँग की लोच क़ीमत के साथ साथ बदलती रहती है। साधारणतः किसी एक दर्जे के मनुष्यों के लिए किसी वस्तु की माँग की लोच ऊँची क़ीमत पर अधिक, मध्यम क़ीमत पर उससे कुछ कम होती है। और ज्यों-ज्यों क़ीमत घटती जाती है और तृप्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों माँग की लोच कम होती जाती है, यहाँ तक कि एक ऐसा अवसर आ जाता है कि जब माँग में लोच बिलकुल नहीं रहती। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक दर्जे के मनुष्यों के लिए ऊँची, मध्यम और कम क़ीमत अलग-अलग होती हैं। दो रुपया सेर घी धनी

मनुष्यों के लिए कम क़ीमत वाला, मध्यम श्रेणी के मनुष्य के लिए मध्यम कीमत वाला और निर्धन श्रेणी के मनुष्य के लिए ऊँची क़ीमत वाला हो सकता है। इसलिए किसी वस्तु की ऊँची, मध्यम और कम क़ीमत किसी ख़ास श्रेणी के मनुष्यों के सम्बन्ध में ही समझनी चाहिए।

भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिए माँग की लोच भी भिन्न-भिन्न होती है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों के लिए एक ही वस्तु की माँग की लोच भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं की माँग की लोच भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों के लिए जानने के लिए नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

पहले हम विलासिता की उन वस्तुओं को लेते हैं जिनकी क़ीमत बहुत अधिक है जैसे मोटरकार। अगर मोटरकार की क़ीमत ३०००) रु० से घट कर २५००) रु० हो जावे तो बहुत से धनी लोगों में उसकी माँग बढ जावेगी। इसलिए मोटरकार की माँग धनी लोगों में लोचदार हुई। लेकिन मध्यम श्रेणी के और निर्धन लोगों के लिए इसकी माँग बिला लोच की ही रही। क्योंकि क़ीमत घट जाने पर भी उनके लिए यह क़ीमत इतनी ऊँची है कि वे लोग मोटर नहीं ख़रीद सकते हैं।

अब विलासिता की उन वस्तुओं को लीजिए जिनकी कीमत बहुत अधिक नहीं है जैसे घडी। अगर घडी की क़ीमत २०) रु० से घट कर १५) रु० हो जावे तो बहुत से मध्यम श्रेणी के लोगों की माँग घड़ियों के लिए बढ जावेगी। इसलिए, घड़ियों की माँग

मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के लिए लोचदार कही जावेगी। लेकिन क़ीमत के कम होने से धनी लोगों की माँग कुछ ज्यादा न बढ़ जावेगी क्योंकि वे लोग २०) रु० क़ीमत पर ही अपनी तृप्ति के योग्य घड़ियाँ ख़रीद चुके होंगे। इसी प्रकार एक किसान के लिए क़ीमत कम होने पर भी घड़ियों की माँग बिला लोच की रहेगी, क्योंकि घड़ी के लिए १५) रु० भी उसके लिए ऊँची क़ीमत है।

इसी प्रकार से हम कह कहते हैं कि विलासिता की वे वस्तुएँ जिनकी क़ीमत बहुत कम है, उनकी माँग की लोच बहुत धनी लोगों के लिए बहुत कम, मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए उससे कुछ अधिक और निर्धन श्रेणी के लोगों के लिए बहुत अधिक होती है।

साधारणतः यह कहा जाता है कि जीवन-रक्षक पदार्थों की माँग की लोच विलासिता की वस्तुओं की लोच से बहुत कम होती है। लेकिन जीवन-रक्षक पदार्थों की माँग की लोच भी लोगों की सम्पन्नता पर निर्भर रहती है। अमेरिका, इंगलैंड इत्यादि मुल्कों में ग़रीब लोगों को भी जीवन-रक्षक पदार्थ पर्याप्त परिमाण में मिल जाते हैं। इसलिए वहाँ इन वस्तुओं की क़ीमत में अगर कुछ कमी हो भी गई तो ग़रीब लोग भी इन वस्तुओं का उपभोग पहले से बहुत अधिक परिमाण में नहीं करते, इसलिए इन जीवन-रक्षक पदार्थों की माँग की लोच इन मुल्को में बहुत कम होती है। लेकिन भारतवर्ष ऐसे देश में जहाँ कि अधिकाश

लोगों को दिन भर में एक समय भी पेट भर भोजन नहीं मिलता है, जीवन-रक्षक पदार्थों की भी माँग में लोच होती है। अगर इनकी क़ीमत कम हो जावे तो माँग कुछ अवश्य बढ़ जाती है।

जो वस्तुएँ जीवन-रक्षा के लिए अनिवार्य नहीं हैं उनकी माँग साधारणतः लोचदार होती है, जैसे कि अच्छा वस्त्र, अच्छा मकान, उपन्यास इत्यादि।

जब किसी मनुष्य को किसी वस्तु के सेवन करने का अभ्यास हो जाता है तो उस वस्तु की माँग की लोच और वस्तुओं की माँग की लोच से कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि वह वस्तु उसके आवश्यक पदार्थों में शामिल हो जाती है। और हम बतला चुके हैं कि जीवन-रक्षक तथा आवश्यक पदार्थों की लोच और वस्तुओं की लोच से कम होती है। जिन लोगों को चाय का अभ्यास हो गया है, उन लोगों के लिए चाय एक आवश्यक पदार्थ हो गया है। अगर चाय की क़ीमत एक आना फी प्याले से पाँच पैसा फ़ी प्याला हो जाय तो भी वे लोग एक प्याला सुबह और एक प्याला सायंकाल अवश्य ही पियेंगे।

लोच की माप—अगर क़ीमत मे बदलाव होने से किसी वस्तु को खरीदने में उतना ही द्रव्य ख़र्च किया जाता है जितना पहले किया जाता था तो उसकी माँग की लोच एक के बराबर मानी जाती है। जब क़ीमत के बढ जाने से किसी वस्तु पर किया। कुल ख़र्च घट जाता है तो उस वस्तु की माँग की लोच

इकाई से अधिक कही जाती है; और अगर कुल ख़र्च बढ़ जाता है तो लोच इकाई से कम कही जाती है।

नीचे के कोष्ठक मे किसी मनुष्य की घी की मासिक माँग और उस पर किया गया ख़र्च दिया जाता है।

क़ीमत प्रति सेर	माँग	कुल ख़र्च	माँग की लोच
॥)	१० सेर	५ रुपया	एक से कम
१)	६ ,,	६ ,,	
१॥)	४ ,,	६ ,,	एक
२)	२ ,,	४ ,,	एक से अधिक
३)	१ ,,	३ ,,	

इस कोष्ठक से यह मालूम होता है कि जब क़ीमत ॥) प्रति सेर से १) प्रति सेर हो जाती है तो उस पर ख़र्च ५ रुपये से ६ रुपये हो जाता है। तब माँग की लोच एक से कम रहती है और घी आवश्यक पदार्थ माना जाता है। जब घी की क़ीमत एक रुपया सेर से १॥) सेर तक बढ़ती है तो घी पर ख़र्च ६ रुपये ही रहता है उसकी माँग की लोच एक के बराबर रहती है और घी आराम की वस्तु माना जाता है। जब घी की कीमत १॥) से बढ़ने लगती है तो कुल ख़र्च कम होने लगता है, उसके माँग की लोच एक से अधिक हो जाती है और घी विलासिता की चीज़ हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि वस्तु की माँग की लोच ऊँची क़ीमत पर एक से अधिक, मध्यम क़ीमत पर एक और कम क़ीमत पर एक से कम रहती है।

किसी मनुष्य के लिये ऊँची क़ीमत पर घी विलासिता की वस्तु, मध्यम क़ीमत पर आराम की वस्तु और कम क़ीमत पर आवश्यक वस्तु माना जाता है।

किसी वस्तु की माँग की रेखा से भी किसी क़ीमत पर माँग की लोच का अनुमान लगाया जा सकता है। नीचे के रेखा चित्र
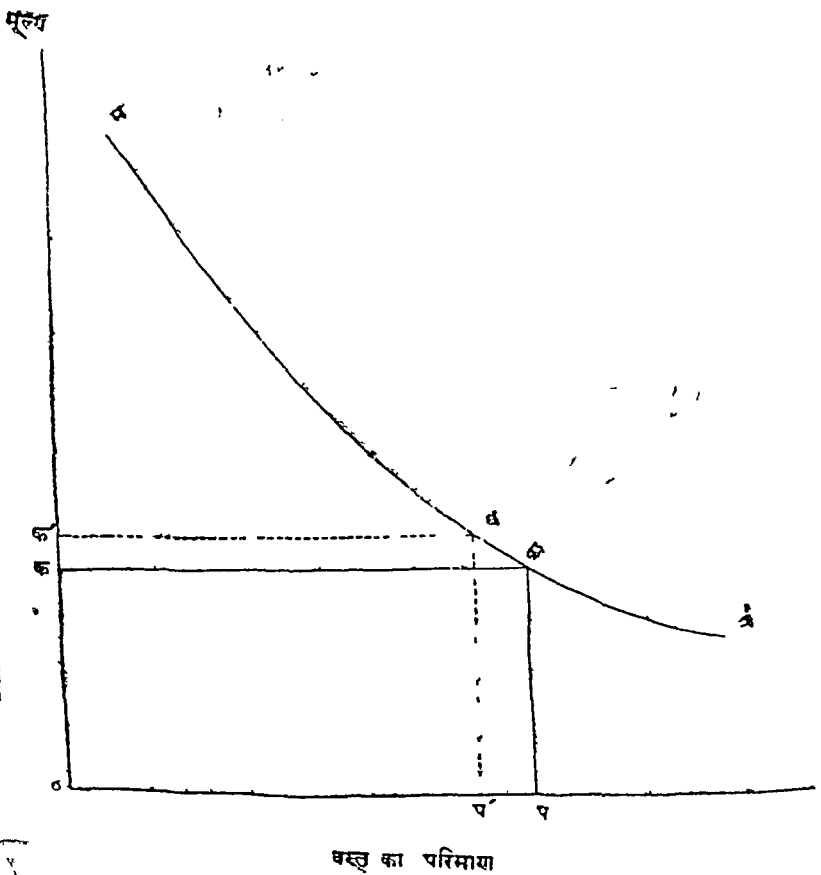
में म म' रेखा माँग की रेखा है। अब यदि हमको ०क क़ीमत पर माँग की लोच मालूम करना हो तो हमे यह जानना चाहिये कि कुछ अधिक क़ीमत पर उसकी माँग के परिमाण में कितनी कमी होगी। इसी चित्र से मालूम होता है कि ०क' क़ीमत पर माँग का परिमाण ०प' हो जाता है। जब क़ीमत ०क रहती है तब इस वस्तु पर ०प अ क परिमाण में द्रव्य ख़र्च किया जाता है। जब क़ीमत ०क' तक बढ़ जाती है तो ख़र्च का परिमाण ०प' ब क' हो जाता है। यदि ०प' ब क' का परिमाण ०प अ क से कम हो तो इस वस्तु की माँग की लोच एक से अधिक, यदि बराबर हो तो माँग की लोच एक के बराबर और यदि अधिक हो तो माँग की लोच एक से कम समझी जावेगी।

माँग की लोच का महत्व—अर्थशास्त्र की दृष्टि से माँग की लोच का बड़ा महत्व है। इससे हमको यह पता लग जाता है कि क़ीमत के बदलाव होने से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न वस्तुओं का भिन्न-भिन्न दर्जे के मनुष्यों की माँग पर कैसा असर पड़ता है। इस बात को जान लेने पर उत्पादकों को और सरकार को अपने-अपने काम में बहुत सहायता मिलती है। उत्पादक लोग, ख़ास कर एकाधिकारी उत्पादक, यह तै कर सकते हैं कि किस क़ीमत पर बेचने से उनको सबसे अधिक लाभ होगा। अगर किसी वस्तु की माँग में बहुत कम लोच हो तो एकाधिकारी उस वस्तु की मनमानी क़ीमत बढ़ा कर बहुत लाभ उठा सकता है। लेकिन अगर किसी वस्तु की माँग बहुत लोचदार हो तो एकाधिकारी को क़ीमत घटाने से ही सबसे अधिक मुनाफा होता है।

इसी प्रकार किसी देश की सरकार को भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं के माँग की लोच जानना ज़रूरी होता है। जब किसी वस्तु पर आयात अथवा निर्यात कर लगाया जावे, अथवा देशी माल पर कर लगाया जावे तो सरकार को यह जानना चाहिए कि इस कर से उस वस्तु की क़ीमत में जो वृद्धि होगी उसका माँग पर क्या असर पड़ेगा। जिन वस्तुओं की माँग की लोच बहुत कम हो उन पर कर लगाने से सरकार को अधिक आमदनी होती है। और जिन वस्तुओं की माँग की लोच अधिक हो उनपर कर लगाने से कम आमदनी होती है। सरकार को यह बात भी ध्यान में रखने के योग्य है कि जिन आवश्यकीय वस्तुओं की माँग की लोच ग़रीब आदमियों को भी कम होती है उनपर कर लगाने से ग़रीब आदमियों को बहुत दिक्क़त उठानी पड़ती है। भारतवर्ष में इसका उदाहरण नमक-कर है। इस कर के कारण यहाँ नमक की कीमत बढ़ गई है। इसका परिणाम यह होता है कि नमक ऐसी आवश्यक वस्तु की माँग भी इस मुल्क में कुछ लोचदार हो गई। ग़रीब किसान अपने पशुओं को काफ़ी परिमाण में नमक नहीं दे पाते हैं।

दसवाँ अध्याय

फ़िज़ूलख़र्ची

इस बात में बिलकुल मतभेद नहीं है कि जीवन-रक्षक पदार्थ और निपुणता-दायक पदार्थ सब लोगों को सेवन करने चाहिए। इनपर किया गया ख़र्च हमेशा न्याययुक्त कहा जाता है। बहुत से लोग यह भी मानने को तैयार हैं कि आराम की चीज़ों पर किया गया ख़र्च भी असंगत नहीं है क्योंकि इससे भी कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐशोआराम और विलासिता की वस्तुओं पर तथा मादक वस्तुओं पर किया गया ख़र्च बहुधा फ़िज़ूलख़र्ची में समझा जाता है।

हम यह बतला चुके हैं कि इस बात का निर्णय करना बहुत सरल नहीं है कि कौन-सी वस्तु जीवन-रक्षक है, कौन-सी ऐशोआराम की है इत्यादि; क्योंकि स्थान, काल तथा मनुष्यों की आर्थिक स्थिति से उपभोग के पदार्थों के वर्गीकरण में भेद हो जाता है। परन्तु हम यह भी बतला चुके हैं कि किन दशाओं में कौन-सी वस्तुएँ विलासिता की वस्तुएँ अथवा कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुएँ मानी जाती हैं। जब किसी वस्तु की क़ीमत बढ़ने पर उस पर किया हुआ ख़र्च कम हो जाता है अर्थात् जिस वस्तु की माँग की लोच एक से अधिक होती है तो उसे विलासिता की वस्तु कहते हैं। जिन वस्तुओं के उपभोग

करने से कार्यकुशलता न बढे और आदत पड़ जाने अथवा सामाजिक बन्धन के कारण जिन पर किया गया खर्च वस्तु की क़ीमत बढ़ जाने से बढ जाता है, उनको कृत्रिम आवश्यकता की वस्तु कहते हैं।

अगर कोई ग़रीब किसान एक घड़ी ख़रीदे तो वह उसके लिए फिजूलख़र्ची समझी जावेगी, लेकिन एक विद्यार्थी के लिए घड़ी आवश्यक समझी जाती है। अगर ग़रीब किसान अपने और अपने बच्चों को भूखा रखकर अथवा ऋण लेकर घड़ी ख़रीदता है तो वह अवश्य विलासिता की वस्तु खरीदता है। वह इस द्रव्य से और ऐसी वस्तुएँ खरीद सकता था जिससे उसकी कार्य-कुशलता अधिक बढ सकती थी, लेकिन अगर एक धनी आदमी जो अपनी प्रारम्भिक आवश्यकताओं को पूरी कर के घड़ी खरीदता है तो फिजूलखर्ची नहीं कहलाती है।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि ऐशो-आराम तथा विलासिता की वस्तुओं पर किया गया ख़र्च कहाँ तक न्याय-संगत हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि आवश्यकताओं का बढ़ना सभ्यता की उन्नति का चिह्न है। वे लोग कहते हैं कि अगर प्रारम्भिक आवश्यकताओं को ही पूर्ण करके लोग चुपचाप बैठ जावें तो वह फिर अपनी पुरानी असभ्य दशा को पहुँच जावेगे। आवश्यकता बढ़ती जाती है इसलिए मनुष्य अधिक-अधिक परिश्रम करता रहता है, इस परिश्रम से और नई आवश्यकताएँ पैदा होती हैं, फिर नया परिश्रम और उद्योग प्रारम्भ होता है। इस प्रकार मनुष्य सभ्यता की ओर अग्रसर होता जाता है। चूंकि जीवन-रक्षक तथा निपुणता-

दायक पदार्थ संख्या मे परिमित हैं इसलिए अपने परिश्रम को केवल इन्हीं पर लगाने से सभ्यता की उन्नति नहीं हो सकती है। लेकिन आराम की तथा विलासिता की वस्तुएँ अपरिमित हैं इसलिए इनके पीछे जो उद्योग किया जावेगा वह भी अपरिमित होगा और इसलिए वह हमको सभ्यता की ओर ले जावेगा !

सब बातें जब तक सिद्धान्त के रूप में कही जाती हैं तब तक किसी विशेष दशा में ठीक मानी जा सकती हैं। परन्तु जब किसी देश में बहुत से मनुष्य भूखों मर रहे हों, बहुत से ऐसे हों जिनको दिन भर में केवल एक बार ही भोजन प्राप्त होता हो तब उस देश के कुछ निवासियों का विलासिता की वस्तुओं का अत्यधिक उपभोग करना राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर नहीं है। भारतवर्ष को लीजिए। कितने लोगों को यहाँ केवल जीवन-रक्षक पदार्थ ही प्राप्त नहीं है ? निपुणता-दायक पदार्थों और आराम की चीजों को जाने दीजिये। यहाँ के दो तिहाई लोगों को जेल में दिये गए भोजन का दो तिहाई भी प्राप्त नहीं है। जब यहाँ के निवासियों को जीवन-रक्षक पदार्थ ही प्राप्त नहीं हैं तो किस प्रकार से विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च न्याय-सगत कहा जा सकता है। हाँ, जो देश इतने समृद्धिशाली हैं जहाँ प्रत्येक मनुष्य को अच्छा खाना, पीना, पहिनना तथा निवास-स्थान प्राप्त हो वहाँ के लोग चाहें तो आराम तथा विलासिता की वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं।

यह कहा जाता है कि विलासिता की वस्तुओं की माँग से

बहुत से लोगों की बेकारी दूर होती है और उनको रोजी भी मिलती है। उदाहरण के लिए आतिशबाजी को लीजिए। ब्याह, शादी इत्यादि उत्सव के समय में इस वस्तु का बहुत प्रयोग किया जाता है। इनका उपभोग करनेवाले लोग कहते हैं—हमने अपने इस विलासिता की वस्तु के उपभोग से बहुत से मज़दूर लोगों को काम दिया है, उनको मजदूरी देकर भूखों मरने से बचाया है, हमने देश का उपकार किया है इसलिए हमारा यह ख़र्च फिजूलख़र्ची में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। अगर ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो इन लोगों के तर्क की असंगतता मालूम पड़ जाती है। माना कि आतिशबाज़ी के पदार्थों को पैदा करने से चन्द मनुष्यों को रोज़ी मिली। लेकिन उस आतिशबाजी से नुक़सान कितना हुआ यह उन लोगों ने नहीं विचारा। पहले तो आतिशबाजी से क्षणिक आनन्द होता है। कहाँ उतना ख़र्च और कहाँ क्षणिक आनन्द! इस आनन्द से भी उपभोक्ताओं की कोई कार्यकुशलता नहीं बढ़ती है। इस बात की आशङ्का रहती है कि कहीं किसी मकान इत्यादि में आग न लग जावे। इसके अलावा इस आतिशबाज़ी की वस्तुओं को बनाने में देश का इतना द्रव्य, श्रम और पदार्थ अन्य इससे अधिक उपयोगी वस्तुओं को बनाने के बदले आतशबाजी की वस्तुओं के बनाने में लग गया। इसलिए दूसरे उपयोगी उद्योग धन्धों में पूँजी और मज़दूर कम मिलने से उन उपयोगी वस्तुओं की उत्पत्ति कम हो गई। अतः उन वस्तुओं की क़ीमत में वृद्धि होने से सर्व-साधारण जनता

को हानि उठानी पड़ी। यदि वह पूँजी और श्रम आतशबाज़ियों के बदले किसी और उपयोगी वस्तु को बनाने में लगाया जाता तो न केवल कुछ लोगों को काम ही मिलता परन्तु वह वस्तु सस्ती हो जाती और जनता को बहुत अधिक लाभ होता। इसलिए हम कह सकते हैं कि आतशबाज़ी विलासिता की वस्तु है और उस पर ख़र्च करना फ़िजूलख़र्ची है। इसी प्रकार नाच, भोज, खेल, तमाशे इत्यादि में भी बहुत सी फिजूलख़र्ची शामिल है।

धनवान् लोग प्रायः कहते है—रुपया हमारा है हम चाहे उसको कैसे ही ख़र्च करें, इसमें किसी का क्या बनता बिगड़ता है? यह बात वैयक्तिक दृष्टिकोण से ठीक मालूम होती है। लेकिन अगर समाज के दृष्टिकोण से भविष्य पर भी दृष्टि रखते हुए देखा जाय तो इन लोगों की भूल स्पष्ट हो जाती है। धनी, निर्धन सब समाज के व्यक्ति हैं, अगर समाज के किसी भी अङ्ग में दुःख या कष्ट हो तो अन्त में उससे सारे समाज पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। अगर सब धनवान् मनुष्य मनमाने तौर पर ऐश आराम और विलासिता के पदार्थों को ही खरीदें और उनके ही रोज़गार और व्यवसाय को उत्साहित करें तो इसका नतीजा यह होगा कि जीवन-रक्षक और निपुणता-दायक पदार्थों की उत्पत्ति घटती जावेगी। इनकी क़ीमत बढ़ जाने से ग़रीब लोग और मध्यम श्रेणी के लोग इन वस्तुओं का उपयुक्त परिमाण में सेवन नहीं कर सकेंगे। अतएव उनका स्वास्थ्य, बल और उत्साह, और इसलिए उनकी कार्य-निपुणता शिथिल होती जावेगी। इससे

उत्पत्ति भी कम और बुरी होती जावेगी जिससे सारे समाज की हानि होगी।

केवल धनी लोगों का ही विलासिता के पदार्थों पर अथवा मादक वस्तुओं पर किया गया ख़र्च निन्द्य नहीं, परन्तु ग़रीब लोगों का इन पदार्थों पर किया गया ख़र्च और भी अधिक निन्द्य है। धनी लोग तो अपने जीवन-रक्षक और निपुणता-दायक पदार्थों को प्राप्त करके भी विलासिता की वस्तुओं के लिये ख़र्च करने में समर्थ होते हैं, लेकिन ग़रीब लोग जब विलासता की वस्तु ख़रीदते हैं तो बहुधा वे लोग अपने जीवन-रक्षक पदार्थों और निपुणतादायक पदार्थों में कमी करके इन वस्तुओं को ख़रीदते हैं। भारतवर्ष में मज़दूरों और छोटे शिल्पकारों की दशा देखिये। वे लोग अपनी आमदनी का अधिकांश भाग कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुएँ जैसे तम्बाकू, शराब, अफ़ीम इत्यादि मादक वस्तुओं के सेवन में ख़र्च करते हैं। इससे उनके स्वास्थ्य की तथा कार्यकुशलता की हानि होती है जिससे उनकी आमदनी भी घटने की सम्भावना रहती है। घर में उनके स्त्री-बच्चों को पेट भर खाना प्राप्त नहीं होता है। कहाँ से बच्चों को घी, दूध, शिक्षा मिल सकती है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य-कुशल बने? इसी प्रकार से ग़रीब लोगों में जो शादी, ग़मी इत्यादि के अवसरों पर कृत्रिम-आवश्यकताओं की वस्तुओं में ख़र्च किया जाता है वह भी अधिकाश फ़िजूलख़र्ची है।

द्रव्य खर्च करने का उत्तम तरीका

अब यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि द्रव्य को ख़र्च

करने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है ? द्रव्य को इस प्रकार ख़र्च करना चाहिये जिससे अधिकाश लोगों को अधिकतम सुख मिले। यह किस प्रकार हो सकता है ? मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-रक्षक पदार्थ और निपुणतादायक पदार्थ पर्याप्त परिमाण मे मिले। जब तक इसका पूरा-पूरा इन्तजाम न हो जावे तब तक किसी प्रकार की भी विलासिता की वस्तु अथवा आराम की वस्तु खरीदना फिजूलख़र्ची हैं और समाज का अनहित करना है। जब ये आवश्यकताएँ पूरी हो जावे तो फिर आराम और विलासिता की वस्तुओं को बर्तना चाहिये। लेकिन ये विलासिता की वस्तुएँ ऐसी न होनी चाहिएँ जिससे स्वास्थ्य अथवा कार्य-कुशलता की हानि हो, या क्षणिक आनन्द के लिए समाज की बहुत हानि हो। अगर कोई धनी आदमी अपने द्रव्य को बहुमूल्य शराब, मेले और तमाशों में ख़र्च करे तो क्षणिक आनन्द के पश्चात् उसके कुछ और हाथ न आवेगा। लेकिन अगर वह इसी द्रव्य को ज़ायदाद खरीदने में, मकान बनवाने मे, पुस्तकों और कलाकौशल की वस्तुओं के खरीदने में, अथवा ज़वाहरात इत्यादि खरीदने में ख़र्च करे तो ये चीजे चाहे उस वक्त उसके कम काम में आवें और ये उसके पास एक तरह की पूँजी के रूप में हो जाती हैं, जो कि समय पर वेची जा सकती हैं, अथवा भविष्य में उसको काम में आ सकती हैं। इन टिकाऊ वस्तुओं पर किया गया ख़र्च एक प्रकार से भविष्य के उपभोग के लिए रक्षित द्रव्य हैं।

टिकाऊ वस्तुओं पर किये गये ख़र्च के सम्बन्ध में भी एक बात ध्यान में रखने के योग्य है। ये वस्तुएँ ऐसी नहीं होनी चाहिये जिससे समाज का उपकार न हो। अगर नदी के किनारे एक कुवाँ बनाया जाय तो शायद उस पर ख़र्च की गई पूंजी और श्रम से बहुत कम फायदा होगा। इसी प्रकार अगर ऐसे मकान बना दिये जावें जिनमें कोई न रह सके तो उन पर किया ख़र्च भी फिजूलखर्ची में आवेगा।

कृत्रिम-आवश्यकताओं की वस्तुओं में शराब, अफीम, नाच, तमाशे इत्यादि कई एक ऐसी बाते शामिल हैं जिनको दूर करने का सब को प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा की वृद्धि से इस काम को करने मे सुगमता हो सकती हैं।

उपर्युक्त क्रम से अगर द्रव्य को ख़र्च करने का प्रयत्न किया जाय तो सभ्यता की अवनिति कदापि नहीं हो सकती है। इसके विपरीत समाज शक्तिशाली और समृद्ध बनेगा जो कि सभ्यता की वृद्धि के वास्तविक चिह्न है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने ख़र्च पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। कृत्रिम आवश्यकताओं की वस्तुओं पर ख़र्च करने की आदत धीरे-धीरे कम करना चाहिए जिससे वह ख़र्च शीघ्र बन्द हो जाय। ऐशो-आराम और विलासिता की वस्तुओं पर भी ख़र्च कम करके बचे हुए द्रव्य को जीवन-रक्षक पदार्थ अथवा ...दयक पदार्थों पर लगाना चाहिये अथवा उसे भविष्य में ... के समय उपभोग करने के लिये अच्छे बैंक में जमा कर

देना चाहिये। इस प्रकार सोच विचार कर ख़र्च करने से प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम सुख और सन्तोष होगा। उपर्युक्त नियमों को पालन करने से कोई भी व्यक्ति बिना अपनी आमदनी बढ़ाये भौतिक वस्तुओं से प्राप्त अपना सुख बढ़ा सकता है और अपना तथा समाज का भला कर सकता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

रहन-सहन का दर्जा

यह तो हम देख ही चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असंख्य होती हैं, फिर भी प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार अपनी आर्थिक दशा तथा अन्य परिस्थितियों के कारण कुछ निश्चित वस्तुओं का उपभोग करता रहता है। इन वस्तुओं के उपभोग का उसको अभ्यास पड़ जाता है। इस उपभोग के क्रम में बहुत कम बदलाव होता है और अगर बदलाव होता भी है तो बहुत धीरे-धीरे होता है। मनुष्य या परिवार जिन-जिन वस्तुओं का उपभोग करता है उससे हम उसके रहन-सहन के दर्जे का पता लगा सकते हैं। चूंकि प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता-जुलता नहीं है इसलिये जितने परिवार हैं उतने रहन-सहन के दर्जे हो सकते हैं, लेकिन फिर भी साधारणतः प्रत्येक देश में नीचे लिखे अनुसार कम-से-कम चार रहन-सहन के दर्जे अवश्य देख पड़ते हैं—

(१) पहले दर्जे मे वे लोग शामिल हैं जिनको अपने जीवन निर्वाह-मात्र वस्तुओं का भी समुचित ठिकाना नहीं रहता है। भी कभी उनको कई दिनों तक उपवास करना पड़ता है। इनको माँगने तथा बहुत गहरे ऋण में डूबने की नौबत आ जाती

है। बड़ी मुश्किल से ये लोग अपने प्राणों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं। इसको दरिद्र रहन-सहन का दर्जा कहना चाहिए।

(२) दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिनको केवल साधारण जीवन-रक्षक पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। इनके दर्जे को न्यूनतम-जीवन-निर्वाह का दर्जा कहते हैं। इनको निपुणता-दायक पदार्थ बहुत थोड़े से—नहीं के बराबर—मिलते हैं। दोनों समय रूखा-सूखा भोजन, फटा पुराना मोटा कपड़ा तथा एक टूटा-फूटा मकान, इन्हीं से ये लोग जीवन-निर्वाह करते हैं।

(३) तीसरे दर्जे को तन्दुरुस्ती तथा आराम का रहन-सहन का दर्जा कहते हैं। इस दर्जे के लोगों को जीवन-रक्षक वस्तुएँ तो सब मिलती ही है, लेकिन इसके अलावा इनको निपुणता-दायक पदार्थ और आराम की वस्तुओं की कमी नहीं रहती है। ये लोग खूब अच्छा पुष्टिकारक खाना खाते, अच्छा स्वच्छ कपड़ा पहिनते हैं और अच्छे हवादार बड़े मकान में रहते हैं। ये अन्य निपुणता-दायक तथा आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। इन लोगों की कार्य-कुशलता बहुत बढ़ी चढ़ी होती है।

(४) चौथे दर्जे के लोग विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। ये वे रईस और धनसम्पन्न लोग हैं जिनको किसी बात की कमी नहीं है। जिस वस्तु को चाहें ख़रीदें और उसका उपभोग करें। वे ख़ूब बढ़िया स्वादिष्ट भोजन करते हैं, शानदार बेशक़ीमती कपड़ा पहिनते हैं, आलीशान बाग़ बग़ीचोंवाले महलों में रहते हैं, दावत, साहित्य, संगीत, कला, यात्रा इत्यादि में हज़ारों रुपया ख़र्च कर

देते हैं। इन लोगों का दर्जा विलासिता का रहन-सहन का दर्जा कहा जाता है।

रहन-सहन के दर्जों का यह वर्गीकरण बिलकुल पूर्ण नहीं है। कई एक मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो कि किन्हीं दो दर्जों के मध्य में हों। कई लोग शायद इन दर्जों में से किसी मे भी न रखे जा सकें, क्योंकि वे कुछ-कुछ प्रत्येक दर्जे के लोगों में शरीक हों। लेकिन मनुष्यों के स्वभाव, आचार, व्यवहार की भिन्नता को दृष्टि रखते हुए (काम चलाने के लिए) रहन-सहन का यह वर्गीकरण उपयुक्त प्रतीत होता है।

ऊपर लिखी हुई बातों से प्रकट होता है कि किसी भी मनुष्य के अथवा परिवार के रहन-सहन का दर्जा बहुत कुछ उसकी आर्थिक दशा पर अवलम्बित रहता है। जितनी आमदनी होगी उतना ही ख़र्च भी किया जा सकेगा। इसलिए हम देखते हैं कि साधारणतः एक सी आमदनीवाले परिवारों का रहन-सहन का दर्जा क़रीब क़रीब समान होता है। इसलिए जब हम एक ही देश में किन्ही दो कालों के रहन-सहन के दर्जे की तुलना करना चाहें तो हम साधारणतः दोनों कालों में समान आमदनीवाले दर्जों की तुलना करते हैं। तथा जब हम दो मुल्कों के लोगों के रहन-सहन के दर्जे की तुलना करते हैं तो भी हम दोनों मुल्कों में समान आमदनीवाले दर्जों की एक दूसरे से तुलना करते हैं। यह बतलाया जा चुका है कि जब हम आर्थिक स्थिति के अनुसार तुलना करते हैं तो हमको यह मान लेना पड़ता है कि और सब

बातें समान हैं जो कि समान नहीं होती हैं।

किसी देश में कितने लोग किस रहन-सहन के दर्जे में हैं, इसका पता लगाने के लिए हमको इस बात का निश्चय करना पड़ता है कि अमुक आमदनी तक के लोग दरिद्र रहन-सहन के दर्जे में हैं, अमुक आमदनी से अमुक आमदनी तक के लोग न्यूनतम जीवन निर्वाह के दर्जे में रहते हैं इत्यादि। इसको जान लेने के बाद हम कह सकते हैं कि किसी एक काल में किसी देश के लोगों मे इतने फी सदी आराम के दर्जे मे, इतने फी सदी विलासिता के दर्जे में रहते हैं इत्यादि। यह जान लेने पर हम एक मुल्क की आर्थिक स्थिति तथा समाज की उन्नति का किन्हीं दो कालों में तुलना कर सकते हैं तथा किसी एक काल में एक दूसरे मुल्क से भी तुलना कर सकते हैं।

यह कहा जाता है जिस देश में प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी अधिक होगी, उस देश के लोगों का रहन-सहन का दर्जा अन्य देशों के लोगों के रहन-सहन के दर्जे से ऊँचा होगा। किसी देश में प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी, उस देश की कुल आमदनी में वहाँ के निवासियों की संख्या से भाग देने से प्राप्त होती है। यह आमदनी उस देश के प्रत्येक व्यक्ति की औसत आमदनी है न कि असली आमदनी। लेकिन रहन-सहन के दर्जे की तुलना के लिए इस औसत आमदनी के साथ-साथ उस देश के लोगों में सम्पत्ति का असली वितरण भी ध्यान में रखना चाहिए। औसत आमदनी रहन-सहन को मापने का सही साधन नहीं है।

इसके अलावा आमदनी उपभोग की वस्तुओं के सिवाय उत्पादक वस्तुओं में भी ख़र्च की जाती है। लेकिन रहन-सहन के दर्जे को जानने के लिए हमको उपभोग की वस्तुओं में ख़र्च की गई आमदनी लेनी चाहिए।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुये हम एकदम से यह नहीं कह सकते कि अमुक देश की प्रति व्यक्ति आमदनी दूसरे देश से अधिक है, इसलिए पहले देश के लोगों का रहन-सहन दूसरे देश के लोगों के रहन-सहन से ऊँचा है। हाँ, हम इतना कह सकते हैं कि अगर दो देशों में और बातें समान हों तो जिस देश में प्रति व्यक्ति आमदनी अधिक है, उस देश के लोगों मे अपने रहन-सहन को ऊँचा करने की अधिक गुञ्जायश और सामर्थ्य है।

अब हम द्रव्य के अलावा उन बातों का विवेचन करते हैं जो कि रहन-सहन पर प्रभाव डालती हैं।

पहले हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि तुलना करने के लिए केवल द्रव्य का ही विचार नहीं करना चाहिए, लेकिन हमें द्रव्य की क्रय-शक्ति ध्यान में रखनी चाहिए। द्रव्य की क्रय-शक्ति दो कालों में अथवा दो देशों में एक सी नहीं होती है। द्रव्य की क्रय-शक्ति को जानने के लिए हमको क़ीमत सूचक अङ्क, साधारण इंडेक्स नम्बरों (Index Number of Prices) को मालूम करना पड़ता है। इसलिए दो कालों के अथवा दो मुल्कों की रहन-सहन की तुलना करने के पहले यह

नितान्त आवश्यक है कि द्रव्य की क्रय-शक्ति का ध्यान रख कर उचित संशोधन कर लिया जावे।

इसके अलावा और भी कई एक महत्वपूर्ण बातें रहन-सहन पर असर डालती है। कोई आदमी लखपति अथवा करोड़-पति होने पर भी संभव है कि उसका रहन-सहन निपुणता-दायक तथा सुख देनेवाला न हो। उसके शरीर की अवस्था, स्वास्थ्य और पाचन क्रिया इतनी ख़राब हो कि वह उपभोग की वस्तुओं से कुछ भी आनन्द न प्राप्त कर सके। इसके विपरीत एक स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट परन्तु ग़रीब मनुष्य उपभोग के साधारण पदार्थों में से ही बहुत आनन्द प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः आनन्द उपभोग के पदार्थों में नहीं परन्तु उपभोक्ता में होता है। अगर धनी उपभोक्ता खूब बढ़िया वस्तुओं से वह आनन्द न प्राप्त कर सका जो कि एक साधारण मनुष्य साधारण वस्तुओं से प्राप्त कर सका है तो हम नहीं कह सकते कि धनी मनुष्य साधारण मनुष्य से भौतिक दृष्टि से ही अधिक सुखी है।

कई एक मनुष्यों में ऐसी-ख़राबियाँ और रोग हो जाते हैं जिनसे उनके रहन सहन पर बहुत असर पड़ता है। आँख, कान, त्वचा, आंत इत्यादि में ख़राबी होने अथवा और बुरे रोगों से पीड़ित रहने से मनुष्य उपभोग की वस्तुओं से पर्याप्त तृप्ति और आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता है।

इसके साथ-साथ कई लोग जो पहले मन और शरीर से बहुत स्वस्थ होते हैं, वे लापरवाही के कारण अनाप शनाप वस्तुओं

के सेवन करने से अपने को बरबाद कर देते हैं। यह बरबादी बुरे स्थानों में रहने, शराब इत्यादि हानिकारक पदार्थों के सेवन करने, बुरी संगति तथा कुविचारों का फल है। ऐसे लोग उपभोग की वस्तुओं से उतना आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते हैं जितना कि वे अपनी स्वस्थ दशा में कर सकते थे।

प्रायः यह देखा जाता है कि कई एक मनुष्य थोड़ी आमदनी से भी, बराबर अथवा उससे अधिक आमदनीवाले लोगों की अपेक्षा अच्छी तरह रहते हैं। ५०) रु० मासिक आयवाले एक क्लर्क का रहन-सहन ७०) रु० या इससे भी अधिक आय वाले क्लर्क से ऊँचा हो सकता है। इसका कारण यह है कि सब लोगों में उपभोग के वस्तुओं पर द्रव्य ख़र्च करने की तथा उन वस्तुओं के उपभोग की योग्यता एक सी नहीं होती है। वस्तुएँ ख़रीदने के लिए कई लोग अपने साथ अनुभवी मनुष्यों को ले जाते हैं, क्योंकि उनको यक़ीन रहता है कि उनके द्वारा वे अच्छी चीज़ सस्ते दामों में ख़रीद सकते हैं। इसी प्रकार घर में कई स्त्रियाँ थोड़े-से समान से भी उन बढ़िया वस्तुओं को बना लेती हैं जिनको अन्य लापरवाह और अनभिज्ञ स्त्रियाँ उससे अधिक समान से भी नहीं बना सकतीं। इस प्रकार की योग्यता तथा अनुभव का रहन-सहन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

पारिवारिक आय-व्यय

किसी परिवार के रहन-सहन का पता लगाने के लिए उस

परिवार के बजट अथवा आय-व्यय अनुमान पत्र का जानना ज़रूरी होता है। बजट से यह मालूम हो जाता है कि उक्त परिवार की आमदनी कितनी है, उस परिवार में कितने प्राणी हैं, रहने के लिए कितने कमरे हैं, और यह भी मालूम होता है कि वह परिवार भिन्न-भिन्न पदार्थों में कितना ख़र्च करता है। बजट से यह भी मालूम होता है कि वह परिवार कुछ बचाता है या नहीं अथवा ऋणग्रस्त है या नहीं। जो कम आमदनीवाला तथा अधिक प्राणियोंवाला परिवार होगा, उसकी आमदनी का अधिकांश भाग जीवन-रक्षक पदार्थों में ख़र्च हो जावेगा। निपुणता-दायक पदार्थों तथा ऐशो-आराम की चीज़ों के लिए उसके पास द्रव्य न बचेगा। लेकिन आमदनी बढ़ने के साथ-साथ जीवन-रक्षक पदार्थों में कम अनुपात में ख़र्च होगा और आराम और विलासिता की वस्तुओं में अधिक अनुपात में ख़र्च होने लगेगा। अगले अध्याय में भारतवर्ष के दो तीन परिवारों के बजटों पर विवेचन किया गया है।

एक जर्मन लेखक डाक्टर एंजिल ने योरोपीय देशों के बहुत से पारिवारिक बजटों को इकट्ठा करके विशेष ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन किया है। उनके अध्ययन के अनुसार भिन्न दर्जे के परिवारों की आमदनी का औसत प्रतिशत ख़र्च भिन्न वस्तुओं पर अगले पृष्ठ पर लिखे अनुसार था।

पदार्थ	मज़दूर के परिवार का ख़र्च	मध्यम श्रेणी के परिवार का ख़र्च	सम्पन्न परिवार का ख़र्च
जीवन निर्वाह	६२ प्रतिशत	५५ प्रतिशत	५० प्रतिशत
वस्त्र	१६ ,,	१८ ,,	१८ ,,
मकान का किराया	१२ ,,	१२ ,,	१२ ,,
रोशनी और लकड़ी कोयला इत्यादि	५ ,,	५ ,,	५ ,,
शिक्षा	२ ,,	३·५ ,,	५·५ ,,
टैक्स (कर)	१ ,,	२ ,,	३ ,,
स्वास्थ्य-रक्षा	१ ,,	२ ,,	३ ,,
अन्य	१ ,,	२·५ ,,	३·५ ,,
	१००	१००	१००

इस कोष्ठक से डाक्टर एञ्जील ने निम्नलिखित परिणाम निकाले हैं:—

(१) कम आमदनीवाले परिवार का अधिकाश भाग जीवन-निर्वाह पर ख़र्च हो जाता है।

(२) वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत ख़र्च लगभग बराबर होता है। अर्थात् ५०) रु० आमदनीवाले का वस्त्र में क़रीब ८) रु० ख़र्च होता है तो १००) रु० आमदनीवाले का १६) रु०, १०००) रु० आमदनीवाले का क़रीब १६०) रु० ख़र्च होता है।

(३) इसी प्रकार किराये में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत ख़र्च बराबर होता है।

(४) अधिक आमदनीवाले परिवार का शिक्षा, स्वस्थ्य-रक्षा, परिचर्या इत्यादि में प्रति-शत खर्च बढ़ जाता है।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने के लिए यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि आमदनी में वृद्धि हो। शिक्षायुक्त मनुष्य ऐसे पदार्थों का सेवन करेगा जिससे उसकी कार्यकुशलता बढ़े, आमदनी बढ़े तथा रहन-सहन भी ऊँचा हो। ऐसे मनुष्यों का परिवार भी बहुत बड़ा नहीं होता है।

इन्द्रिय-निग्रह से जन-संख्या की वृद्धि कम होती है, इसलिए मनुष्यों को अधिक उपभोग की वस्तुएँ मिलने की सम्भावना रहती है। इससे भी रहन-सहन अच्छा हो सकता है।

स्थान-परिवर्त्तन से कभी-कभी मनुष्यों की आमदनी बढ़ने से उनके रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है।

देशाटन करने से तथा अच्छी बातों को सीखने से भी रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है। इसलिए यात्रा तथा शिक्षा प्रचार के लिए जितनी अधिक सुविधा होगी, उतनी ही अधिक वृद्धि रहन-सहन में हो सकेगी।

बारहवाँ अध्याय

भारतवासियों का रहन-सहन

पिछले अध्याय में जन-साधारण के रहन-सहन का विवेचन किया जा चुका है। इस अध्याय में उसी सिलसिले में हम भारतवासियों के रहन-सहन पर विचार करते हैं।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की जन-संख्या में से ७५ फी सदी लोग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से सम्बन्ध रखते हैं। इसी कारण से यहाँ के निवासियों में क़रीब ९० फी सदी लोग गाँव में रहते हैं।

बहुधा प्रत्येक कृषि प्रधान देश में यह देखा जाता है कि वहाँ के अधिकांश लोग ग़रीब होते हैं। कृषि एक ऐसा धन्धा है जो कि प्रकृति के खिलवाड़ पर बहुत अधिक निर्भर रहता है। अधिक वर्षा हो, कम वर्षा हो, ठीक समय वृष्टि न हो, पाला पड़ जाय इत्यादि प्रकृति के व्यापार से कृषक लोगों का तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले लोगों का जीवन क्रम बहुत अनिश्चित हो जाता है। ख़ास कर भारतवर्ष में जहाँ कि प्रकृति को वश में करने के साधनों की अभी बहुत कमी है, कृषि प्रकृति पर ही निर्भर रहती है।

भारतवर्ष के कृषि प्रधान देश होने पर भी यहाँ की जन-संख्या में बहुत वृद्धि हो रही है इसलिये हम यह आशा नहीं कर सकते कि यहाँ के जन साधारण का रहन सहन बहुत ऊँचा हो सकता है। फिर भी यह मालूम करना एक महत्व की बात है कि यहाँ के लोगों का रहन-सहन कैसा है। इस बात को जानने के लिए हमको यहाँ के निवासियों को उनकी आमदनी के अनुसार भिन्न-भिन्न दर्जों मे रख कर, प्रत्येक दर्जे का अलग-अलग विवेचन करना पड़ता है। एक दर्जे के लोगों के रहन-सहन स भारतवर्ष के रहन-सहन के बारे में अनुमान नहीं कर सकते।

पहले हम उन लोगों के रहन-सहन पर विचार करते हैं जिनकी आमदनी १,०००) रु० मासिक तथा उससे अधिक है। ऐसे लोगों की संख्या भारतवर्ष में बहुत कम है। इस दर्जे में बड़े ओहदेवाले लोग जैसे इण्डियन सिविल सर्विस के लोग, बड़े-बड़े ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार, बड़े वकील, डाक्टर इत्यादि, तथा बड़े-बड़े कारखानों के मालिक इत्यादि-इत्यादि लोग शामिल हैं। इन लोगों के रहन-सहन का दर्जा बहुत ऊँचा रहता है। ये लोग निपुणता-दायक और आराम की वस्तुओं के अतिरिक्त ऐशो-आराम और विलासिता की वस्तुओं का भी बहुतायत से सेवन करते हैं।

दूसरे दर्जे के लोग वे हैं जिनकी आमदनी ५,००) रु० से १,०००) रु० मासिक तक है। इस दर्जे में पहले दर्जे से कुछ छोटे ओहदे के लोग जैसे प्रान्तिक सिविल सर्विस के लोग, यूनीवर्सिटी के

प्रोफ़ेसर लोग, वकील, डाक्टर, ज़मींदार और उद्योग-धन्धे में लगे हुए तथा व्यापारी लोग भी शामिल हैं। इन लोगों को जीवन-रक्षक, निपुणता-दायक पदार्थ पर्याप्त रूप से मिलते हैं। ऐशो-आराम की चीज़ों का भी ये लोग काफ़ी इस्तमाल करते हैं। कई एक लोग मोटर-कार भी रखते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के एक छात्र ने एक डिप्टी कलेक्टर के नवम्बर १९२७ का पारिवारिक आय-व्यय का बजट बनाया है। उस परिवार में आठ प्राणी हैं। तीन बड़े और पाँच छोटे। उसकी उस महीने की कुल आमदनी ६६७) रु० थी और ख़र्च ६४३) रु० था। कुल ख़र्च में से १५७) रु० खाने के पदार्थों में; ३०) रु० २ आना रोशनी तथा ईंधन में; वस्त्र, जूते, आभूषण, फ़र्नीचर इत्यादि में औसत ९५) रु० ९ आना ६ पा०; विद्या, औषधि, सेवक, टैक्स, दान, यात्रा, और कृत्रिम आवश्यकताओं की वस्तुओं में औसत २९४ रु० १४ आना, तथा मकान का किराया और मरम्मत में ६५) रु० ख़र्च हुआ। उस महीने में कुल बचत २४) रु० हुई। उपसंहार में वह छात्र लिखता है कि इस परिवार में रहन-सहन का दर्जा काफी ऊँचा है। अच्छे तथा क़ीमती वस्त्रों का अधिक उपभोग किया जाता है, अच्छा पुष्टिकारक भोजन किया जाता है, रहने को एक बड़ा साफ सुथरा मकान है, साहित्य, संगीत, कला, इत्यादि का प्रचार अधिक हो रहा है और सफाई, चिकित्सा इत्यादि का काफ़ी ध्यान रखा जाता है।

तीसरे दर्जे में हम उन लोगों को शामिल करेंगे जिनकी आमदनी

१००) रु० के ५००) रु० माहवार तक है। इस दर्जे मे सभी उद्योग-धन्धों के कुछ-न-कुछ लोग शामिल हैं। इन लोगों के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि इनका रहन-सहन अच्छा है। इनको जीवन-रक्षक तथा निपुणता-दायक पदार्थ पर्याप्त मिल जाते हैं। लेकिन ऐशो-आराम की वस्तुएँ कुछ कम मिलती हैं। फिर भी अगर ये लोग अपनी आमदनी का सदुपयोग करें तो बहुत अच्छी ज़िन्दगी बसर कर सकते हैं।

चौथे दर्जे में वे लोग हैं जिनकी मासिक आमदनी ४०) रु० से १००) रु० तक है। इन लोगों में क्लर्क लोग, स्कूल के अध्यापक, छोटे-छोटे व्यवसायों के लोग इत्यादि शामिल हैं। ये लोग जीवन-रक्षक पदार्थ पा जाते हैं। लेकिन निपुणता-दायक पदार्थ इनको पर्याप्त परिमाण में नहीं मिलते हैं। अगर ये लोग ऐशो-आराम की वस्तुओं का सेवन करते हैं तो जीवन-रक्षक तथा निपुणता-दायक पदार्थों में कमी करके इन वस्तुओं को ख़रीदते हैं। नहीं तो इनकी आमदनी इतनी नहीं है जिससे ये ऐशो-आराम की वस्तुओं का सेवन कर सकें। प्रयाग विश्वविद्यालय के अनेक छात्रों ने क्लर्क लोगों के पारिवारिक आय व्यय के बजट तैयार किये हैं जिनमें से एक क्लर्क के बजट का यहाँ विवेचन किया जाता है। इस परिवार में पति, पत्नी तथा तीन बच्चे हैं। इसकी मासिक आमदनी ४५) रु० थी और कुल ख़र्च दिसम्बर १९२७ का क़रीब ४४||) रु० था जिसमें से क़रीब २४) रु० खाने पीने में, ३) रु० ईंधन और रोशनी में, ८|||) वस्त्र जूते

इत्यादि में, ६) विद्या, औषधि तथा कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं इत्यादि मे ख़र्च हुआ था, इस परिवार के बजट को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि खाने पीने, तथा पहिनने के लिए साधारण वस्तुओं का उपभोग होता है। आमदनी का अधिकाश भाग इन्हीं में निकल जाता है। विद्या, स्वास्थ्य और आमोद प्रमोद की वस्तुओं पर बहुत कम ख़र्च होता है। रहने के लिए केवल तीन छोटे कमरे हैं। इनसे स्पष्ट है कि रहन-सहन का दर्जा बहुत साधारण है।

पाचवे दर्जे में वे लोग शामिल हैं जिनकी आमदनी १५) से ४५) रु० माहवार तक है। इन लोगों में अधिक मज़दूर लोग, किसान, छोटे-छोटे क्लर्क, गाव के अध्यापक इत्यादि लोग शामिल हैं। भारतवर्ष के अधिकाश लोग इसी दर्जे में हैं।

पहले हम श्रमजीवियों के रहन-सहन पर विचार करते हैं। सन् १९२१—२२ में बम्बई प्रान्त के श्रमजीवी विभाग के मिस्टर जी० फिएडले शिराज की अध्यक्षता में बम्बई शहर में रहनेवाले श्रमजीवियों के ख़र्च की जाँच की थी। २४७६ श्रमजीवियों के परिवार के और ६०३ अकेले पुरुषों के पारिवारिक बजट इकट्ठा किये गये थे। इन परिवारों में सभी जाति के और सभी कारखानों के लोग शामिल थे। कुल परिवारों में ९० फी सदी परिवार हिन्दुओं के थे।

आमदनी के अनुसार परिवारों का अगले पृष्ठ पर दिये हुये कोष्ठक के अनुसार वर्गीकरण किया गया था:—

कुल परिवार की मासिक आमदनी	परिवारों को संख्या	कुल का प्रतिशत
३०) रु० माहवार से कम	६८	२·७
३०) रु० और ४०) के अन्तर्गत	२७२	११·०
४०) रु० " ५०) " "	८३५	३३·७
५०) रु० " ६०) " "	५३९	२१·८
६०) रु० " ७०) " "	४८४	१९·६
७०) रु० " ८०) " "	१६७	६·८
८०) रु० " ९०) " "	७०	२·८
९०) रु० से अधिक	३८	१·६
	२४७३	१००·०

मुख्य-मुख्य वस्तुओं मे ख़र्च इस प्रकार विभाजित पाया गया था।

खाने की चीज़ें	५६·८ प्रतिशत
ईंधन और रोशनी	७·४ "
वस्त्र	९·६ "
मकान का किराया	७·७ "
अन्य चीज़े	१८·५ "
	१००·०

इन बजटों पर विचार करने पर यह पाया गया कि ग़रीब परिवारों में केवल खाने पीने में क़रीब ६० प्रतिशत ख़र्च हो

जाता था। घी, दूध इत्यादि निपुणता-दायक पदार्थों में कुछ ख़र्च नहीं किया जाता था। प्रोफेसर शिराज का कहना है कि कई श्रमजीवी को प्रायः क़ैदी से कम परिमाण में खाना मिलता है।

मकान, वस्त्र, रोशनी की दशा और भी भयानक है। जाच किये गये परिवारों में ९७ प्रतिशत केवल एक कमरे में अपनी गुजर करते पाये गये थे। इस कमरे में भी सफ़ाई, रोशनी इत्यादि का बहुत ख़राब इन्तज़ाम था। इस कारण मृत्यु सख्या बहुत ज़्यादा थी। १९२१ में १००० पैदा बच्चों में से ८२८ बच्चे एक वर्ष से कम उम्र में ही मर गये थे। इस प्रकार रहने से यह फल होता था कि लोग बीमार पड़ जाते थे। उनमें शराब पीना, इत्यादि और भी बुरे व्यसन पाये गए थे।

अन्य ख़र्चों में बर्तन, साबुन, दवा, यात्रा, शिक्षा, क़र्ज़ पर सूद, तम्बाकू, शराब इत्यादि वस्तुएँ शामिल हैं। इसमें से अधिकाश शराब में और सूद में खर्च होता था। सूद की दर ७५ प्रतिशत से १५० प्रतिशत तक थी। शिक्षा में और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत ही कम ख़र्च किया जाता था।

इस विवरण से स्पष्ट है कि श्रमजीवियों की दशा कितनी ख़राब है। उन लोगों को भर पेट खाने को भी नहीं मिलता, निपुणता-दायक पदार्थों की बात जाने दीजिये। शिक्षा, व्यायाम इत्यादि शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को बढ़ाने का कुछ भी प्रबन्ध न होने से इन लोगों का स्वास्थ्य गिरता जाता है और ये लोग दुर्व्यसनों की ओर आकृष्ट होते जाते हैं। इसका परिणाम

यह होता है कि इनकी कार्य-कुशलता कम होती जाती है और आमदनी भी घटती जातो है। इससे इनकी सन्तान भी कमजोर होती है और उनकी कार्य-कुशलता भी बहुत कम होती है। यह बुरा असर फैलता और बढ़ता जाता है।

अन्तिम दर्जे मे वे लोग शामिल हैं जिनकी मासिक आमदनी १५) से कम है। इनमें अधिकांश ग़रीब किसान और मज़दूर शामिल हैं। ग़रीब किसानों की दशा मज़दूरों से भी दर्दनाक है। मज़दूरों को तो कुछ-न-कुछ नियमित मज़दूरी मिलती रहती है, लेकिन किसानों की आमदनी अधिकतर प्रकृति पर निर्भर रहती है। इसलिए इनकी आमदनी बिलकुल अनिश्चित रहती है।

भारतवर्ष के किसानों की आमदनी बहुत ही कम है। प्रयाग विश्वविद्यालय के एक अन्वेषक छात्र (Research Scholar) ने खोज करके यह पता लगाया है कि सयुक्त प्रान्त के अधिकाश किसानों की वार्षिक आमदनी ७०) रु० और ९०) रु० के दर्मियान है। इस आमदनी से हम अनुमान कर सकते हैं कि इन लोगों का रहन-सहन का दर्जा कैसा होगा। इन लोगों को साल भर में हमेशा दो मर्तबा रूखा-सूखा भोजन भी प्राप्त नहीं होता है। वस्त्र इन लोगों का बहुत ही साधारण और फटा और मैला दिखलाई देता है। रहने के लिए ये लोग एक साधारण छप्पर में ही गुजर करते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि जो परिवार बहुत ग़रीब होता है उसमें जन-संख्या बहुत अधिक होती है। ग़रीब किसानों के बच्चे केवल एक वस्त्र पहिने हुए व कभी-कभी बिना

वस्त्र के ही घूमते दिखलाई पडते हैं। इनके लिए दूध, घी तो अलग रहा, दोनों वक्त अच्छा खाना तक प्राप्त नहीं होता है। उनकी शिक्षा इत्यादि का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है।

भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा किसान हो जो ऋण में डूबा हुआ न हो। इन लोगों का व्यवसाय ही ऐसा है जिसमें बिना ऋण लिए हुए काम नहीं चलता है। पहले तो बीज, पशु तथा औज़ारों के लिए कर्ज़ लेना पडता है। इसके अलावा शादी, उपनयन इत्यादि अवसरों पर कर्ज़ लेना अनिवार्य हो जाता है। व्याज की दर बहुत ज्यादा रहती है। किसान बिचारा व्याज ही नहीं चुका सकता है, मूलधन चुकाने की बात कौन कहे। इसके अलावा सरकारी लगान भी उसको देना पड़ता है। इसमें भी उसकी आमदनी का एक काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है।

ऐसी स्थिति मे हम लोग किसानों के कष्टों का अन्दाज़ नहीं लगा सकते हैं। भारतवर्ष का किसान सहनशील और शान्तिप्रिय होता है। वह जैसे तैसे अपना निर्वाह करता जाता है। इसलिए कई लोगों का यह ख्याल है कि किसान सुखी रहता है। लेकिन अगर ध्यानपूर्वक इनकी दशा देखी जाय तो पता चलता है कि कितने कष्ट और श्रम से वह अपनी और अपने परिवार की जीवन रक्षा करने मे समर्थ होता है।

क्या अधिकांश भारतवासियों का रहन-सहन बढ़ रहा है?

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भारतवासियों के रहन-

सहन का दर्जा ऊँचा हो रहा है या नीचे गिर रहा है। इस विषय में दो मत हैं एक सरकारी और दूसरा ग़ैर-सरकारी। सरकारी मत के अनुसार रहन-सहन ऊँचा होता जा रहा है। उन लोगों का कहना है कि भारतवर्ष में आनेवाले माल (आयात) की वृद्धि हो रही है जिसमें से अधिकाश माल विलासिता और ऐशो-आराम की वस्तुएँ हैं। इससे ये लोग परिणाम निकालते हैं कि भारतवासियों की आमदनी बढ़ गई है इसलिए उनका रहन-सहन भी बढ़ गया है। लेकिन उनका यह तर्क ठीक नहीं है। विलासिता की वस्तुओं के अधिक सेवन होने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि धनी लोग उन वस्तुओं का अधिक सेवन करने लगे हों जिससे उनका रहन-सहन ऊँचा हो गया हो। लेकिन केवल धनी लोगों के रहन-सहन के बढ़ने से यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भारतवासियों का रहन-सहन बढ़ गया है क्योंकि कुल जन-संख्या में धनी लोगों की संख्या बहुत ही कम है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि लोग जीवन-रक्षक और निपुणता-दायक पदार्थों में ख़र्च घटा करके विलासिता की वस्तुएँ ख़रीदते हों।

सरकारी लोगों का कहना यह भी है कि लोग अच्छे कपड़े पहनने लगे हैं, जूतों का व्यवहार भी बढ़ रहा है, मकान अच्छे बन रहे हैं, डाक, तार, रेल इत्यादि पर का ख़र्च भी बढ़ रहा है। चाय, पान, सिगरेट इत्यादि पर भी ख़र्च बढ़ रहा है इसलिए लोगों का रहन-सहन भी बढ़ रहा है। ऊपर लिखे गये दो कारणों द्वारा ही हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि यह तर्क भी ठीक नहीं है।

आजकल के बड़े बूढ़ों की राय में भारतवर्ष का पतन हो रहा है। सत्तर-अस्सी साल की उम्र के वे लोग अपने हृष्ट-पुष्ट और बली शरीर से आजकल के नवयुवकों के शरीर की तुलना करके ही बतलाते हैं कि आजकल के लोगों का रहन-सहन किस प्रकार का है। उन लोगों का कहना है कि उनकी युवावस्था में वे लोग पौष्टिक पदार्थों का सेवन करते थे, व्यायाम इत्यादि स्वास्थ्यवर्द्धक बातों का विशेष ध्यान रखते थे। उनकी राय में आजकल के लोग द्रव्य का ख़र्च तो उनसे अधिक करते हैं लेकिन वह ऐसी वस्तुओं में ख़र्च करते हैं जिनसे उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति की उन्नति होने के बजाय उसका ह्रास होता है। आज कल के लोगों में कार्य करने की शक्ति, जोश और उत्साह बहुत कम रहता है। ये लोग प्रायः अल्पायु होते हैं। इन सब कारणों से वे लोग कहते हैं कि आजकल भारतवासियों के वास्तविक रहन-सहन का दर्जा ऊँचा होने के बजाय गिर रहा है।

वास्तविक बात यह मालूम पड़ती है कि कुछ धनवान लोगों का रहन-सहन शिक्षा इत्यादि के अधिक प्रचार से प्राचीन काल के बनिस्बत कुछ अच्छा हो गया है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की आधुनिक आर्थिक स्थिति के कारण ये लोग भी अपने इस रहन-सहन के दर्जे को बनाये रखने में समर्थ होंगे अथवा नहीं। ग़रीब लोग भी अवश्य कुछ आराम और विलासिता की वस्तुओं का सेवन करने लगे हैं लेकिन वे लोग अपने जीवन-रक्षक और निपुणता-दायक पदार्थों मे कमी करके इनमें ख़र्च कर रहे हैं। इसलिये निश्चय-पूर्वक हम नहीं कह सकते कि इनका रहन-सहन ऊँचा हो रहा है।

तेरहवाँ अध्याय

रहन-सहन का वास्तविक दर्जा

पिछले दो अध्यायों में यह बतलाया जा चुका है कि किसी देश में किसी भी समय अनेक रहन-सहन के दर्जे होते हैं, और यह भी बतलाया जा चुका है कि भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा किस प्रकार है। इस अध्याय में यह दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है कि किसी देश के मनुष्यों का, विशेषतः भारतवासियों के रहन-सहन का, वास्तविक दर्जा कौन सा होना चाहिये और उसको प्राप्त करने के लिए किन युक्तियों का अवलम्बन करना चाहिये।

किसी भी देश के निवासियों का रहन-सहन तभी उपयुक्त कहा जा सकता है जब कि वहाँ के निवासियों को तृप्ति अधिकतम हो। इस अधिकतम तृप्ति को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक निवासी का रहन-सहन ऐसा हो जिससे उसको अधिकतम तृप्ति हो। चूँकि प्रत्येक मनुष्य की इच्छा, प्रकृति, रुचि इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है इसलिए एक ही तरह के रहन-सहन से सब मनुष्यों को अधिकतम तृप्ति नहीं मिल सकती है। परन्तु तिस पर भी सब मनुष्यों में कई एक बातें एक-सी होती हैं, इसलिये हम एक

ऐसे रहन सहन के दर्जे का अनुमान कर सकते हैं जिससे अधिकांश लोगों को अधिकतम तृप्ति मिले। इस दर्जे को हम रहन-सहन का वास्तविक दर्जा कहते हैं। हम उस मनुष्य के दर्जे को रहन-सहन का वास्तविक दर्जा कहेंगे जो उन वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करे जिससे उसकी कार्य-कुशलता बढ़े, शारीरिक और मानसिक बल बढ़े, और इसके साथ-साथ जो उन वस्तुओं का त्याग करे जिससे उसकी कार्य-कुशलता, मानसिक तथा शारीरिक बल की क्षति हो। अब हमको यह जानना चाहिये कि इस रहन-सहन के वास्तविक दर्जे में कौन-कौन सी वस्तुएं सम्मिलित हैं।

मनुष्य को सबसे पहले शरीर-रक्षा के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से शरीर में बल आता है और कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन भोजन अच्छा और पुष्टिकारक होना चाहिये और पेट भर होना चाहिये। भोजन का परिमाण और गुण भोजन करने वाले की उम्र, कद, स्वास्थ्य, स्वभाव, जलवायु इत्यादि पर निर्भर रहता है। छोटे उम्र के आदमी को बड़े उम्र के आदमी की अपेक्षा कम पुष्टिकारक भोजन की आवश्यकता होती है, तथा एक मज़दूर को एक क्लर्क से अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि भोजन साफ स्थान में साफ बर्तनों में पकाया और खाया जावे। खाने के समय मनुष्य को हमेशा प्रसन्न रहना चाहिये और किसी प्रकार की चिन्ता इत्यादि को पास फटकने न देना चाहिये।

इस प्रकार भोजन करने से भोजन का शरीर पर बहुत अच्छा असर पड़ता है।

भोजन के बाद वस्त्र की बारी आती है। वस्त्र का स्वास्थ्य और कार्य-कुशलता से घना सम्बन्ध है। धूप, वर्षा, जाड़ा, गरमी इत्यादि का शरीर पर बहुत असर पड़ता है, इसलिए यह आवश्यक है कि इनके बुरे असर से शरीर की रक्षा की जाय। वस्त्र इस प्रकार के होने चाहिए जिससे उपयुक्त रूप से शरीर की रक्षा हो। वस्त्र मौसम के अनुसार और कार्य के अनुसार होने चाहिए; जैसे जाड़ों में ऊनी कपड़े, गरमियों में सूती कपड़े, खेती के काम में एक तरह के कपड़े, कोयले की खान के काम में दूसरी तरह के कपड़े इत्यादि। यह कोई आवश्यक नहीं है कि कपड़े बेश-क़ीमती, चटकीले-भड़कीले हों; लेकिन यह आवश्यक है कि कपड़े मैले, फटे-पुराने न हों। अच्छे साफ कपड़े पहिन कर मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है, काम करने की इच्छा होती है और उत्साह बढ़ता है।

हमारी प्रधान आवश्यकताओं में से तीसरी आवश्यकता रहने के लिए मकान की है। हमको मकान के बारे में यह देखना ज़रूरी है कि मकान अच्छी जगह पर बना हुआ है या नहीं, मकान में कितने कमरे हैं, रोशनी, सफाई, पानी इत्यादि का कैसा इन्तज़ाम है, पड़ोस कैसा है, इत्यादि। मनुष्य की तन्दुरुस्ती उसके रहने के स्थान पर बहुत अवलम्बित रहती है। अगर मकान गन्दी जगह में हो, छोटा हो, रोशनी सफ़ाई का अच्छा इन्तज़ाम न हो, तो

उसमें रहने वालों की तन्दुरुस्ती ख़राब हो जायगी और उनकी कार्य-कुशलता का भी ह्रास होगा। किसी पाँच-छः आदमियों की औसत-परिवार के लिए कम-से-कम पाँच कमरे आवश्यक हैं, जिनमें खाने के, सोने के, उठने-बैठने इत्यादि के कमरों का ठीक-ठीक इन्तज़ाम होना चाहिए। मकान और उसके इर्द-गिर्द की जगह साफ रहनी चाहिए। कमरों में रोशनी और हवा का अच्छा इन्तज़ाम रहना चाहिए। कमरों में यथायोग्य मेज़, कुरसी, पलग इत्यादि भी परिमित सख्या में आवश्यक हैं।

तन्दुरुस्ती के लिए व्यायाम, खेल, नींद भी बहुत आवश्यक हैं। जब हम थक जाते हैं तो हमको मनोरञ्जन की आवश्यकता होती है। यह मनोरजन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त होता है। किसी मनुष्य का मनोरंजन घूमने से, किसी का गप्प लड़ाने से, किसी का सङ्गीत से और किसी का व्यायाम से होता है। लेकिन अक्सर यह देखा गया है कि शारीरिक-कार्य करने वाले व्यक्तियों को कुछ मानसिक कार्य करने से और मानसिक कार्य करनेवाले व्यक्तियों को कुछ शारीरिक कार्य करने से लाभ होता है। यह बात ध्यान रखने के योग्य है कि मनोरंजन इस प्रकार का न होना चाहिए कि जिससे क्षणिक आनन्द के बदले भविष्य में अधिक हानि हो। नींद का स्वास्थ्य से बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक जवान व्यक्ति को कम-से-कम छः घंटे नींद की आवश्यकता है। इससे शरीर और मन को आराम मिलता है और उनमे नवीन शक्ति का

सञ्चार होता है।

रहन-सहन के वास्विक दर्जे में शारीरिक उन्नति की वस्तुओं के उपभोग के साथ-साथ वे वस्तुएँ भी शामिल हैं जिनसे हमारी मानसिक उन्नति भी हो। इसके लिए शिक्षा अनिवार्य्य है। शिक्षा से मनुष्य बहुत-सी ऐसी बाते समझ पाता है जिनसे उसके रहन-सहन पर बड़ा असर पड़ता है। जैसे उचित शिक्षा से मनुष्य समझ जाता है कि कम उम्र में विवाह करना हानिकारक है, मद्य, मास का भक्षण करना, जुआ खेलना इत्यादि बुरा काम है। इन बातों को समझने से और इसके अनुसार बर्तने से हमारा रहन-सहन अच्छा होता जाता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है शिक्षा के लिए पाठशाला, पुस्तकालय, यात्रा इत्यादि का सुचारु प्रबन्ध हो।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि अधिकाश भारतवासी दरिद्र और न्यूनतम रहन-सहन के दर्जे में हैं। देश मे अधिकतम सन्तोष और तृप्ति फैलाने के लिए और देश की मानसिक तथा शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि इन लोगों का रहन-सहन वास्तविक बनाया जाय। रहन-सहन को ऊँचा करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं उद्योग करना चाहिए और देश की सरकार और अन्य सामाजिक संस्थाओं को इस काम में उसकी मदद करनी चाहिए।

प्रत्येक सरकार का यह कर्तव्य है कि वह अपनी किसी प्रजा को भूखों न मरने दे। प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम उसके जीवन-

निर्वाह मात्र के लिए वस्तुएँ अवश्य मिलनी चाहियें। कई एक लोगों का ख़याल है कि अगर सरकार प्रत्येक भूखे, नगे को अन्न वस्त्र देती फिरेगी तो इससे बहुत से लोग जो काम करके अपना निर्वाह कर सकते हैं वे भी आलस्यवश काम छोड़ कर सरकार के ख़जाने पर ही अवलम्बित हो जायँगे। इसलिए आलसियों और भिखमङ्गों की संख्या बढ जाने से सरकार को उनको खिलाने-पिलाने के लिए जनता पर बहुत टैक्स लगाना पड़ेगा और देश की भी क्षति होगी। लेकिन अगर सरकार इस तरह इन्तज़ाम करे कि जो लोग काम करने को समर्थ हैं उनसे काम लिया जाय और जो लोग काम करने में बिलकुल असमर्थ हैं उनकी द्रव्य के रूप में नहीं, बल्कि उपयोग की वस्तुओं को देकर सहायता की जाय तो यह अपवाद बहुत कुछ हद तक दूर हो-सकता है। इस प्रकार सहायता के लिए सरकार को जिस द्रव्य की आवश्यकता होगी वह द्रव्य टैक्स के रूप में धनसम्पन्न लोगों से ही लिया जाना चाहिए। इससे धनी लोगों की तृप्ति में बहुत कम घटती होगी और ग़रीब लोगों की तृप्ति में बहुत अधिक वृद्धि होगी, अतएव देश की कुल तृप्ति, सन्तोष और सुख में वृद्धि होगी।

सरकार का यह भी कर्तव्य है कि शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि का देश में समुचित प्रबन्ध करे। स्थान-स्थान पर विद्यालय, वाचनालय, चिकित्सालय, पार्क इत्यादि का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। जो लोग बहुत ग़रीब हैं उनको इन वस्तुओं का निःशुल्क उपयोग करने देना चाहिए। कम-से-कम प्रारम्भिक शिक्षा प्रत्येक

व्यक्ति को अवश्य दी जानी चाहिये। इन सब बातों से प्रजा की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकाश होगा और वह स्वयं अपने रहन-सहन को अच्छा करने तथा अपने कार्य-कुशल बनाने का प्रयत्न करेगी।

भारत की सरकार को भारतवासियों का रहन-सहन वास्तविक दर्जे पर लाने के लिए यहाँ के निवासियों को ऋण से मुक्त करने का प्रयत्न अवश्य ही करना पड़ेगा। भारतवर्ष के अधिकाश निवासी, खासकर किसान लोग ऋण से इतने ग्रस्त हैं और उनको इतनी ऊँची सूद की दर पर कर्ज लेना पड़ता है कि वे लोग सदा ही ऋण के बोझ से दबे रहते हैं और मरने पर उस बोझ को अपनी सन्तान पर लाद जाते हैं, इसलिए उनकी सन्तान को भी उसी पुरानी परिस्थिति में रहना पड़ता है। सरकार का कर्तव्य है कि सहकारी बैंक तथा सहकारी साख समितियाँ इत्यादि का स्थान-स्थान पर आयोजन करके जनता के कष्ट का निवारण करे।

सरकार को इस बात का भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिये कि आयात-निर्यात कर तथा द्रव्य की सहायता द्वारा देश के उद्योग-धन्धों को मदद दे। इससे देश की क्रय-शक्ति बढ़ेगी और प्रति व्यक्ति आमदनी भी बढ़ेगी, इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने रहन-सहन को ऊँचा करने में समर्थ होगा।

समाज को चाहिये कि इन सब प्रकार के कामों में सरकार का हाथ बँटावे। लेकिन साथ-ही-साथ उसका कर्तव्य यह भी है कि किसी काम के लिए सरकार का मुँह जोहे न रहे। अगर वह समझे कि अमुक

बात प्रजा के लिये हित की है और अगर सरकार उस काम को करने को तैयार न हो तो समाज का कर्तव्य है कि वह उस काम को अपने हाथों में ले। जितने कर्तव्य सरकार के सम्बन्ध में कहे जा चुके हैं उनमें से अधिकाश समाज अपने हाथों लेकर सुचारु रूप से उनका प्रवन्ध कर सकता है। समाज को चाहिये कि वह ऐसी संस्थाएँ और समितियाँ बनाये जो देश के निवासियों की आर्थिक कठिनाइयाँ दूर करें और बुरी सामाजिक प्रथाओं का सुधार करे। सम्पन्न लोगों का कर्तव्य है कि वे अपने ग़रीब भाइयों की द्रव्य से, विद्यालय इत्यादि खोलकर मदद करें। पढ़े-लिखे पुरुषों का कर्तव्य है कि वे गाँव-गाँव में जाकर लोगों को उपदेश दें जिससे वे बाल-विवाह, मद्यपान, कृत्रिम आवश्यकताओं के ख़र्च इत्यादि को छोड़ दें।

इन सब सुधारों का परिणाम यह होगा कि देश में सुख, सन्तोष और शक्ति फैल जायगी, जिससे देश के निवासी नीरोग, सम्पन्न तथा कार्य कुशल बन जायँगे।

चौदहवाँ अध्याय

सरकार और उपभोग

सरकार का हस्तक्षेप किन दशाओं में उचित है।

इस अध्याय मे इस बात पर विचार किया जाता है कि सरकार को प्रजा के उपभोग-सम्बन्धी विषयों में हस्तक्षेप करना चाहिये या नहीं। अगर हस्तक्षेप करना चाहिये तो कहाँ तक करना चाहिये।

कई-एक लोगों का कहना है कि मनुष्य एक स्वाधीन जीव है। उसको प्राकृतिक हक़ प्राप्त है। इसलिए उसको खाने, पीने, पहनने इत्यादि उपभोग-सम्बन्धी बातों में पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिये। जब जिस वस्तु के उपभोग की मनुष्य को इच्छा हो उस वस्तु के उपभोग करने में उसको बाधा पहुँचाना प्राकृतिक तथा न्याय की दृष्टि से ठीक नहीं है। इसलिए, इन लोगों की दृष्टि से किसी समाज अथवा सरकार को यह उचित नहीं है कि वह मनुष्य के प्राकृतिक हक़ों को छीनकर सरकारी क़ानूनों द्वारा उसके उपभोग-सम्बन्धी विषयों में हस्तक्षेप करे।

पहले तो यह बात विचारणीय है कि किसी व्यक्ति को

प्राकृतिक हक़ प्राप्त हैं या नहीं। लेकिन यह बात सत्य है कि जब तक कोई व्यक्ति किसी समाज के भीतर रहता है तब तक उसके काम, रहन-सहन इत्यादि का असर समाज पर पड़े विना रह नहीं सकता। अगर कोई मनुष्य अपने प्राकृतिक हक़ों के बल पर मनमानी करना चाहता है तो उसको चाहिये कि वह समाज से अपने को अलग कर ले और जङ्गलों या पहाड़ों में जाकर उन हक़ों का उपयोग करे। अगर वह समाज में रहना चाहता है तो उसको इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उसके किन कामों से समाज का लाभ होता है और किन कामों से समाज की हानि। और उसको वही काम करना चाहिये जिससे उसका तथा साथ साथ समाज का लाभ हो।

समाज की रक्षा के लिए सरकार को किसी मनुष्य के स्वतन्त्र कार्यों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो जाती है। मनुष्य साधारणः स्वार्थी होता है। वह यह विचार नहीं करता कि उसके अमुक कार्य से समाज के ऊपर क्या असर पड़ रहा है। अगर उसके किसी कार्य से उसको सन्तोष तथा तृप्ति मिलती है तो अवश्य ही वह उस कार्य को करने के लिए तत्पर हो जाता है, चाहे उससे उसके पड़ोसी या और व्यक्ति की कितनी ही हानि क्यों न हो। ऐसी अवस्था में सरकार को हस्तक्षेप करना त न्त आवश्यक हो जाता है।

मादक वस्तुओं के सम्बन्ध में सरकार का हस्तक्षेप

शराबी, अफीमची, गजेड़ी अथवा भगेड़ी इत्यादि लोग

कहते हैं कि अगर हम शराब पीते हैं तो किसी का क्या बिगाड़ते हैं, अपने पैसे से पीते हैं, और अपना स्वास्थ्य ख़राब करते हैं। इसलिए इसमे किसी को हमको टोकने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन अगर ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उनका यह तर्क बिलकुल ग़लत है। वे अपना ही नुक़सान नहीं कर रहे हैं बल्कि सारे समाज का तथा देश का नुक़सान कर रहे हैं। मादक वस्तुओं के सेवन से उनका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है और उनकी कार्य-कुशलता कम होती जाती है। इससे उन लोगों की आमदनी कम हो जाती है। आमदनी कम होने से उनका रहन सहन गिर जाता है। वे लोग अपने बच्चों को अच्छा भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा नहीं दे पाते। इसका फल यह होता है कि उनकी सन्तान रोगी, निर्बल तथा मूर्ख होती है। इससे देश की उत्पादक शक्ति कम होकर राष्ट्रीय आय कम हो जाती है। इस प्रकार सारे समाज को हानि उठानी पड़ती है। इसलिए सरकार को उचित है कि ऐसी वस्तुओं का सेवन बन्द करने की कोशिश करे।

कई लोगों का कहना है कि मादक वस्तुओं से सरकार को कर (टेक्स) के रूप में बहुत आमदनी होती है और इस कर के वसूल करने में भी सुविधा होती है। अप्रत्यक्ष कर होने से लोग इसको बिना किसी प्रकार की तकलीफ महसूस करते हुए देते हैं। उन लोगों का यह भी कहना है कि इन मादक वस्तुओं के सेवन से देश समृद्ध होता है; क्योंकि इन वस्तुओं को उत्पादन करने में बहुत से किसान, पूँजिपति, व्यापारी, मज़दूर इत्यादि

बहुत से लोग मालामाल हो जाते हैं। इस प्रकार देश भी समृद्धिशाली हो जाता है।

लेकिन ध्यानपूर्वक देखने से मालूम हो जाता है कि इस तर्क में कोई सार नहीं है। यह बात तो ठीक है कि सरकार को इन वस्तुओं पर कर से बहुत आमदनी है, लेकिन यह कर योग्यता के अनुसार नहीं लिया जाता। ग़रीब व अमीर जो भी इन वस्तुओं का सेवन करता है सब को बराबर कर देना पड़ता है। इसके अलावा अगर इन मादक वस्तुओं का उत्पादन बिलकुल बन्द कर दिया जाता तो जो पूँजी, श्रम व खर्च इन वस्तुओं में होता था वह किन्हीं ऐसी वस्तुओं के उपार्जन में होता, जिससे समाज की वास्तविक भलाई होकर समाज अधिक समृद्ध और सुखी होता। समाज के समृद्ध होने पर सरकार भी समृद्ध हो जाती है क्योंकि वह कर दूसरे रूपों में भी वसूल कर सकती है।

यह बात सही है कि मादक वस्तुओं के उत्पन्न करने से थोड़े से लोग कुछ काल के लिए सम्पन्न हो जाते हैं। लेकिन इससे अधिक लोगों को हमेशा के लिए हानि उठानी पड़ती है। यही पूँजी और श्रम मादक वस्तुओं के उपार्जन के बदले अगर दूसरे अच्छे व्यवसायों में लगाया जाता तो भी इन लोगों को कम आमदनी न होती और देश का भी कल्याण होता।

वस्तुओं में मिलावट और सरकार का कर्तव्य

आजकल असली वस्तुओं का मिलना दुर्लभ सा हो गया

है। प्रत्येक वस्तु में कुछ इस प्रकार की मिलावट रहती है जिससे उपभोक्ता को असली वस्तु का पहचाना बहुत मुश्किल हो जाता है। इससे उपभोक्ता को केवल द्रव्य-सम्बन्धी ही हानि नहीं उठानी पड़ती, बल्कि बुरी खाद्य वस्तु के सेवन से उसके स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। उदाहरण के लिए घी को लीजिये। आजकल घी मे वनस्पति-घी, चर्बी, तेल इत्यादि की मिलावट पाई जाती है। प्रत्येक उपभोक्ता को इतना ज्ञान तथा समय नहीं होता कि वह प्रत्येक वस्तु की वैज्ञानिक रूप से परीक्षा करके उनको ख़रीदे। इसी प्रकार दूध, मिठाई, तेल में भी प्रायः मिलावट रहती है। इन अवस्थाओं में सरकार का कर्तव्य है कि वह ऐसे क़ानून बनावे जिससे इस प्रकार की मिलावट बन्द हो जाय। इसके लिए मिलावट करने वालों को कड़ी सजा दी जानी चाहिए। भारतवर्ष की कई एक म्यूनिसिपल्टियों ने इस प्रकार के कानून का प्रचार किया है। लेकिन खेद है कि इनके ठीक सञ्चालन न होने से समाज का कोई विशेष उपकार नहीं हुआ है।

झूठे विज्ञापन और माप-तौल के सम्बन्ध में हस्तक्षेप

आजकल का ज़माना विज्ञापन का ज़माना कहा जाता है। लोगों को भिन्न-भिन्न वस्तुओं की सूचना विज्ञापनों द्वारा दी जाती है। यह बात सत्य है कि कई वास्तविक विज्ञापनों द्वारा समाज की भलाई होती है। लोग जानते हैं कि कौन-सी वस्तु कहाँ और किस मूल्य पर मिल सकती है। लेकिन आजकल बहुत से विज्ञापन

झूठे और जनता को धोखा देने वाले होते हैं। विज्ञापनों में वस्तुओं की झूठी तारीफ लिखी रहती है और बेचारी जनता उसके धोखे में आकर ठगी जाती है। इसके साथ-साथ विज्ञापनों मे ख़र्च बहुत बढ रहा है, जिसका बोझ उपभोक्ताओं के सिर पर पड़ता है। सरकार का कर्तव्य है कि वह कानूनों के द्वारा झूठे विज्ञापनों से जनता की रक्षा करे।

कई व्यापारी लोग झूठी तौल और बट्टे रखते हैं, जिससे भी उपभोक्ताओं को हानि होती है। सरकार को उचित है कि वह समय-समय पर इनकी जाँच करवाये और धोखेबाजों को उचित दण्ड दे।

युद्ध के समय सरकार का हस्तक्षेप

युद्ध के समय में सरकार को उपभोग-सम्बन्धी विषयों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पडती है। ऐसे समयों में फौज के लिए गोला, बारूद इत्यादि अन्य सामानों की विशेष आवश्यकता होती है। इसलिए देश की पूँजी और श्रम कई उपभोग सम्बन्धी व्यवसायों से हटाकर दूसरे व्यवसायों में लगाने पड़ते हैं। समय-समय पर प्रत्येक देश मे लड़ाई के समय उपभोग के विषय में कानून बनाये जाते हैं। वर्तमान महायुद्ध के समय इङ्गलैंड, जर्मनी, फ्राँस इत्यादि देशों में ऐसे क़ानून बनाये गये हैं जिनसे जनता को उपभोग के पदार्थों की बहुत कमी पड़ गयी है। ऐसे ख़ास ख़ास समयों पर सरकार को उपभोग-सम्बन्धी मामलों मे हस्तक्षेप करना ही पड़ता है। यह सब

बातें देश की रक्षा के लिए ही की जाती हैं। ऐसे समयों पर जनता को चाहिए कि वह स्वयं सरकार तथा अपने देश की सहायता करे न कि सरकार के इस काम में रोड़ा अटकावे।

सार्वजनिक सेवाओं के सम्बन्ध में सरकार का कर्तव्य

कई एक सार्वजनिक सेवा (Public Utility Services) ऐसी हैं जैसे रेल, तार, डाक इत्यादि जिनका प्रबन्ध किसी व्यक्ति-विशेष की अपेक्षा सरकार अच्छी तरह कर सकती है। सरकार को चाहिए कि इन सेवाओं का ऐसा इन्तज़ाम करे और इनका मूल्य इतना तै करें जिससे सर्वसाधारण को इन वस्तुओं के उपभोग करने में सुविधा हो। कुछ ऐसे आधारभूत उद्योग-धन्धे होते हैं जैसे कि लोहा और इस्पात की खानें, जङ्गलात इत्यादि जिनका सर्वसाधारण जनता और देश की समृद्धि से सम्बन्ध रहता है। इनका प्रबन्ध सरकार के हाथ में रहना चाहिये। सरकार को ऐसा इन्तज़ाम करना चाहिए जिससे इन खानों तथा उद्योग-धन्धों का उपभोग भविष्य की जनता के लिए भी सुरक्षित हो। अगर ये आधार-भूत उद्योग-धन्धे जनता के हाथों में छोड़ दिये जायँ तो इस समय की जनता उनकी पूर्ण उपयोगिता ले ले और भविष्य में होने वाली जनता के लिए कुछ भी न बचे। ऐसी हालत में सरकार का हस्तक्षेप करना उचित है।

इस अध्याय का साराश यह है कि जब तक किसी व्यक्ति के उपभोग और रहन-सहन से समाज की कोई हानि न हो, तब तक

उसको अपने मन के अनुसार बर्तने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लेकिन जहाँ उसके रहन-सहन से समाज पर बुरा असर पड़ता हो वहाँ सरकार का कर्तव्य है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उससे समाज की रक्षा करे। अगर सरकार के हस्तक्षेप से समाज का उपकार हुआ तो उसकी कार्रवाई सराहनीय समझी जाती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

बर्बादी और अपव्यय

वस्तुओं की बर्बादी

आजकल संसार के सामने बरबादी का बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय उपस्थित है। बरबादी का उपभोग, रहन-सहन और देश की समृद्धि से गहरा सम्बन्ध है। इङ्गलैंड, फ्रांस इत्यादि मुल्कों में जहाँ महायुद्ध में बहुत हानि हो रही है वहाँ इस बरबादी और व्यर्थता को दूर करने में बड़े बड़े विद्वान लोग अपनी बुद्धि ख़र्च कर रहे हैं। वास्तव में प्राचीन काल से ही बहुत-सी बातों में बरबादी होती चली आ रही है। कहीं द्रव्य की बरबादी हो रही है, कहीं अन्न की बरबादी, कहीं समय, शक्ति, स्वास्थ्य इत्यादि अनेक चीज़ों की बरबादी हो रही है। इन सब बरबादियों का फल यह होता है कि देश की उतनी तृप्ति और भलाई कम हो जाती है।

अगर हम किसी वस्तु या सेवा से कुछ उपयोगिता हासिल न कर सकें या उतनी उपयोगिता हासिल न करें जितनी उससे हो सकती थी, तो हमको उस वस्तु के उपयोग से बहुत कुछ हानि होती है। चूँकि हम उसकी उपयोगिता हासिल न कर सके, इस लिए उसकी उपयोगिता हमारे लिए बर्बाद हो गई। अगर हम

समय से पूरी उपयोगिता न ले सके तो समय की बरबादी हुई, अगर हम अपने द्रव्य से पूरी उपयोगिता न ले सके तो द्रव्य की बरबादी हुई। इत्यादि।

हमारे घरों, कारखानों और अन्य स्थानों में भी विविध वस्तुएँ बरबाद होती हैं। पहले तो ये बरबाद हुई वस्तुएँ बहुत कम परिमाण में दिखाई देती हैं। लेकिन इनका वर्द्धमान Cumulative योग बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाता है। अगर प्रत्येक घर में जितनी वस्तुओं की बरबादी होती है उनमें से आधी भी बचाई जावे तो देश के बहुत से लोगों को भूखों न मरना पड़े। इसी प्रकार अगर कारख़ानों में तैयार माल बनाने के बाद जो छोटी-मोटी चीजें बेकार पड़ी रहती हैं उनकी उपोत्पत्ति की जाय तो बहुत बचत हो सकती है।

किस-किस विभाग में किस तरह बरबादी होती है और उसको रोकने के क्या-क्या साधन हैं, इनका अब संक्षिप्त तौर पर वर्णन किया जाता है।

पहले घर का हाल देखना चाहिए। घरों में सब से अधिक बरबादी अन्न की होती है। प्रत्येक घर में कुछ न-कुछ कच्चे तथा पक्के अन्न की बरबादी हो रही है। घर के किसी कोने में अथवा आस-पास की नाली में रोटी के टुकड़े, चावल इत्यादि पड़े दिखाई देते हैं। इस बरबादी के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि खाना अच्छा न बना हो, इसलिए बरबाद हो गया हो। दूसरा यह कि घर का इन्तज़ाम ख़राब होने से खाना जरूरत से अधिक बना

हो। अगर इन दोनों बातों में सुधार हो जाय, अर्थात् घर के लोग खाना बनाने की क्रिया में निपुण हो जायँ और घर का इन्तज़ाम अच्छा हो जाय तो बचत के साथ परिवार अधिक सुखी रहेगा। शादी इत्यादि उत्सवों पर ढेर-का-ढेर भोजन बर्बाद होता है। इस प्रकार कई एक परिवारों में लापरवाही तथा बुरे इन्तज़ाम के कारण बहुत सी चीजे बरबाद हो जाती हैं। कई एक चीजें ऐसी होती हैं, जैसे शीशा, घड़ी इत्यादि जो कि बहुत सम्हाल कर यथास्थान रखी जानी चाहिए। इन चीज़ों की उन घरों में, जहाँ ठीक इन्तज़ाम नहीं है, बहुत तोड-फोड़ होती है। इसी प्रकार कपडों का क़िस्सा है। अगर कपड़े सम्भाल कर हिफ़ाजत के साथ रखे जायँ तो वही कपड़े जो नाकामियाब समझ कर फेंक दिये जाते हैं, छः महीने साल भर और चलें। फ़टे-पुराने कपड़े यहाँ तक कि कूडे कर्कट की भी कुछ न कुछ उपयोगिता अवश्य होती है। फटे-पुराने चीथड़ों से काग़ज़ बन जाता है, कूड़े की खाद बन जाती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी वस्तुओं की पूर्ण उपयोगिता हासिल करे। इसके लिए सब से पहले शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे लोगों में मितव्ययिता फैले और उन्हें बरबादी के भयानक परिणाम की भी जानकारी हो जाय। घरों में वस्तुओं की बरबादी दूर करने के लिए गार्हस्थ्य-शास्त्र की शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। प्रत्येक गृहिणी को इस शास्त्र में निपुण होना चाहिये। उसको जानना चाहिए कि परिवार में कितने और कैसे सामान की आव-

श्यकता है और उस समय उन सबसे अधिकतम तृप्ति किस प्रकार हासिल की जा सकती है। इससे घरों में बहुत सी वस्तुओं की बचत होगी और परिवार का रहन-सहन भी पहले से अच्छा हो जायगा।

उपली जलाने से हानि

खेती के लिए खाद बहुत आवश्यक है। गोबर की बहुत अच्छी खाद बनती है। लेकिन भारत के किसान इतने ग़रीब हैं कि वे गोबर को खेतों में डालने के बदले उनके उपले बनाकर ईंधन का काम चलाते हैं। इससे खेतों को बहुत नुक़सान पहुँचता है। एक कृषि-शास्त्र-विशेषज्ञ का अनुमान है कि अगर सब गोबर का, खाद के लिए प्रयोग किया जाय तो भारत की एक चौथाई उपज और बढ़ जाए। सब गोबर को खाद के लिए बचाने का उत्तम उपाय यह है कि किसानों के लिए ईंधन का कुछ इन्तज़ाम किया जाय। यह इस तरह हो सकता है कि गाँवों के नज़दीक कुछ ज़मीन जङ्गलात के लिए छोड़ दी जाय। उसमें बबूल के वृक्ष लगाये जायँ और किसानों को वहाँ से बिला मूल्य लकड़ियाँ लाने की इजाज़त दी जाय। इन जङ्गलों से और भी कई फ़ायदे होंगे। एक तो इनसे बारिस बढ़ेगी और जङ्गल के माल से बहुत सी और चीज़ें भी बनने लगेंगी। इससे बहुत से लोगों को रोज़ी भी मिलेगी और राष्ट्रीय आय भी बढ़ेगी।

स्वास्थ्य की बरबादी

इसके बाद स्वास्थ्य की बरबादी पर विचार करना चाहिए।

ऐसे संक्रामक रोगों से जो सरकार और जनता के प्रयत्नों से रोके जा सकते हैं, प्रति वर्ष भारत में लाखों आदमी मर जाते हैं। यदि स्वास्थ्यरक्षा-सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार हो और भारतवासी अपना रहन-सहन स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के अनुसार करने लगें तो बीमारी बहुत कम हो जाय और मृत्यु सख्या भी कम हो जाय। भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु-संख्या भी बहुत अधिक है। बच्चों की मौत कम करने के लिए पहले यह आवश्यक है कि बाल-विवाह बन्द कर दिया जाय। माताओं को उचित शिक्षा दी जाय जिससे वे सन्तान-रक्षा का ज्ञान प्राप्त कर सकें। कारखानों के नियम इस प्रकार के बनाये जायँ जिससे माताओं को अपने बच्चों की परवरिश इत्यादि का उचित अवसर मिले। रहन-सहन का दर्जा वास्तविक बनाने की कोशिश की जानी चाहिये। चिकित्सा इत्यादि का भी उचित इन्तजाम होना चाहिये।

द्रव्य का अपव्यय

द्रव्य का भी बहुत अपव्यय होता है। मादक वस्तुओं के उपयोग के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है। कुछ लोग जुआ खेल कर अपने द्रव्य का अपव्यय करते हैं। जुआ खेलने से किसी पदार्थ की उत्पत्ति तो होती ही नहीं। उससे देश को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ नहीं होता। हाँ, उससे सैकड़ों परिवार बरबाद अवश्य हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह जुआ कभी न खेले। सरकार का भी यह कर्तव्य है कि जुआ खेलने वालों को

उचित दंड देकर इस व्यसन से जनता को बचावे। कुछ लोग मुक़दमेबाजी में अपने द्रव्य को नष्ट कर देते हैं। ज़रा-जरा सी बातों के लिये अदालतों की शरण लेकर वे अपना द्रव्य बरबाद कर देते हैं। हजारों कुटुम्ब इस मुकदमेबाजी से बरबाद हो चुके हैं। हम लोगों को चाहिये कि जहाँ तक हो सके स्थानीय पंचायतों या पंचों द्वारा अपना झगड़ा तै कराने का पूर्ण प्रयत्न करें।

कुछ लोग क्षणिक सुख के लिए बहुत सा रुपया खर्च कर देते हैं, चाहे अन्त में उससे हानि ही क्यों न हो। विलासिता की वस्तुओं में जितना रुपया ख़र्च होता है उसका एक बड़ा हिस्सा बर्बाद होता है। मान लीजिये, किसी बारात में खूब आतिशबाजियाँ हुई, बहुत बढ़िया भोज दिया गया। इससे ख़र्च करनेवालों को क्षणिक सन्तोष अवश्य प्राप्त हुआ। लेकिन अगर समाज की दृष्टि से देखिये तो कितनी बरबादी हुई। वही श्रम और वही पूँजी अगर आतशबाजियाँ, शराब इत्यादि बनाने के बदले अन्न पैदा करने और वस्त्र बनाने में लगायी जाती तो बहुत से लोगों की प्राण-रक्षा होती। कहाँ क्षणिक सुख, कहाँ प्राण-रक्षा। समाज का जो श्रम और पूँजी ख़र्च होता है उससे समाज को पूरी उपयोगिता मिलनी चाहिये। अगर न मिले तो समाज की दृष्टि से उस हद तक उस श्रम और पूँजी की बरबादी हुई।

सरकार भी कभी-कभी द्रव्य का अपव्यय करती है। बहुत से सरकारी विभागों में इतना अधिक द्रव्य व्यय किया जाता है कि उससे जनता की बहुत ही हानि होती है। लड़ाई के अवसरों पर

बर्बादी और अपव्यय

देश के प्राणियों तथा द्रव्य की बहुत बर्बादी होती है। सरकार की नीति इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे जनता का अधिकतम लाभ और सुख हो।

जितने प्रकार की बर्बादियाँ इस अध्याय में बतलाई गई हैं अगर इन बर्बादियों में से एक चौथाई भी बचाई जा सके तो भारतवर्ष में कम-से-कम पेटभर अच्छा अन्न और पहिनने को अच्छे वस्त्र और रहने को अच्छा मकान सबको प्राप्त हो जाय।

सोलहवाँ अध्याय

भविष्य का उपभोग और बचत

पिछले अध्याय में वर्तमान आवश्यकताएँ तथा उनकी तृप्ति की विवेचना की गई है। इस अध्याय में भविष्य की आवश्यकताएँ तथा उनकी तृप्ति का वर्णन किया जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि उपभोक्ता अपने भविष्य को किस प्रकार से अच्छा और सन्तोषदायक बना सकता है? एक उपाय यह है कि वह अपनी आमदनी का कुछ भाग वर्तमान आवश्यकताओं पर ख़र्च न करके भविष्य की आवश्यकताओं के लिए बचा कर रखे। इस बचत और उससे प्राप्त होनेवाली आमदनी से वह अपने भविष्य को सुरक्षित बना सकता है। लेकिन कोई उपभोक्ता तब तक भविष्य के लिए कुछ भी न बचावेगा जब तक उसको इस बात का पूर्ण निश्चय न हो जाय कि भविष्य में उसको उस बचत से अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी तृप्ति मिलेगी जितनी उसको उस द्रव्य के इस समय ख़र्च करने से मिलती है। इसलिए पहले यह जान लेना चाहिये कि बचत से और उसको पूँजी रूप में परिणित करने से क्या क्या लाभ होते हैं।

भविष्य को पूर्णतया कोई नहीं जान सकता। एक मनुष्य

जो इस समय बहुत सम्पन्न है, इस बात को दावे के साथ नहीं कह सकता कि उसके दिन भविष्य में ऐसे ही रहेंगे। कितने ही कारण इस प्रकार अचानक उपस्थित हो जाते हैं कि लखपति व्यक्ति भी रोटी को मुँहताज हो जाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति हो सकने वाली दुर्घटनाओं से अपने को सुरक्षित रखना चाहता है। यह तभी हो सकता है जब वह अपनी आमदनी का कुछ भाग वर्तमान आवश्यकताओं की तृप्ति में ख़र्च न कर के भविष्य के लिए बचा रखे।

मनुष्य को जब एक तरह के रहन-सहन का अभ्यास हो जाता है तो वह रहन-सहन को बनाए रखने की कोशिश करता है। कम-से-कम वह उस रहन-सहन को नीचे गिरा देना पसन्द नहीं करता। काम करने की उम्र में वह जितना पैदा कर सकता है उतना पैदा करने की उम्मेद उसको बुढापे अथवा बीमारी की अवस्था में नहीं होती। ऐसे मौकों में अपने रहन-सहन को बनाये रखने के लिए उसको अपनी आमदनी का कुछ भाग बचाने की आवश्यकता होती है।

कुछ व्यक्ति अपने को समाज के व्यक्तियों से ऊँचा उठाने की ग़रज से, समाज तथा उसके ऊपर हुकूमत रखने के लिए धन सचित करते हैं। संचित पूँजी से कुछ लोगों को एक विशेष प्रकार का आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता है।

बचत से मनुष्य अपनी तथा अपने सन्तान की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकाश कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति

अपने लड़के को इञ्जिनियर बनाने के लिए उस पर अपनी आमदनी का कुछ अंश ख़र्च करे तो वह एक प्रकार से पूँजी संचित करता है। अपनी बचत को बैंक में रखने के बजाय वह उसको अपने लड़के पर ख़र्च करता है, ताकि उसका लडका उस पूँजी से प्राप्त हुए ज्ञान और योग्यता से भविष्य में स्वयं लाभ उठावे और बुढ़ापे में उसकी मदद भी करे।

यह तो मानी हुई बात है कि बिना बचत के पूँजी संचित हो नहीं सकती। और आजकल के युग में बिना पूँजी के उत्पत्ति नहीं हो सकती। अगर मनुष्य बचाना छोड़ दे और जन संख्या इसी हिसाब से बढती जाय, तो एक समय ऐसा आ जायगा जब देश में पूँजी बहुत कम हो जायगी और पदार्थों की उत्पति की वृद्धि रुक जायगी। इससे उपभोग और रहन-सहन में क्या असर पड़ेगा इसको बताने की आवश्यकता नहीं है।

इन सब बातों के अलावा मनुष्य अपनी सन्तान के वास्ते कुछ धन, दौलत छोड़ जाने की इच्छा से, तीर्थ-यात्रा करने के लिहाज़ से, दान-पुण्य इत्यादि के लिए भी धन बचाते हैं।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य को अपनी आमदनी में से कितना हिस्सा भविष्य के उपयोग के लिए बचाना चाहिये।

छठे अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि अगर कोई मनुष्य अपने द्रव्य से अधिकतम तृप्ति प्राप्त करना चाहता है तो उसको विविध पदार्थों में इस प्रकार व्यय करना चाहिए,

जिससे प्रत्येक पदार्थ पर ख़र्च हुये अन्तिम रुपये की उपयोगिता लगभग बराबर हो। उस अध्याय में सुगमता के लिए केवल वर्तमान आवश्यकताओं पर विचार किया गया था। लेकिन द्रव्य केवल वर्तमान आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए ही नहीं, परन्तु भविष्य की आवश्यकताओं की तृप्ति के काम में भी आता है।

द्रव्य के उपयोग में वर्तमान उपभोग तथा भविष्य उपभोग दोनों सम्मिलित है। बुद्धिमान मनुष्य अपनी आमदनी को वर्तमान और भविष्य के उपभोग में इस प्रकार विभाजित करेगा जिस तरह उन पर ख़र्च हुए अन्तिम रुपये की उपयोगिता क़रीब-क़रीब बराबर हो। लेकिन भविष्य के उपभोग की सीमान्तिक उपयोगिता का अन्दाज़ लगाना बहुत मुश्किल है। इसके लिए दो बातों का ख़याल अवश्य रखना पड़ता है। पहले तो भविष्य बिलकुल अनिश्चित है। मनुष्य यह नहीं जानता कि वह भविष्य के लिए बचाये हुए द्रव्य का उपभोग कर सकेगा या नहीं। सम्भव है कि वह उस उपभोग के लिए जीवित ही न रहे। दूसरी बात यह है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की प्रकृति के अनुसार तथा समय और परिस्थिति में बदलाव होने से वर्तमान और भविष्य के सुख

उपयोगिता वर्तमान उपभोग की उपयोगिता से बहुत कम होगी। वह अपनी आमदनी को वर्तमान आवश्यकताओं की तृप्ति में ही खर्च कर देगा। इसके अलावा एक ही मनुष्य भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे वर्तमान और भविष्य की उपयोगिताओं को भिन्न-भिन्न परिमाण में मापेगा। किसी समय वह इतना लोलुप होगा कि भविष्य के उपभोग की उपयोगिता को तुच्छ समझेगा और दूसरे समय जब उसको भविष्य की चिन्ता व्याप्त कर रही हो उस समय वह वर्तमान उपभोग के बजाय भविष्य के उपभोग को अधिक महत्त्व देगा।

ऐसी अवस्था में एक औसत मनुष्य वर्तमान और भविष्य के उपभोग की उपयोगिता को बराबर नहीं समझता। वह एक रूपये की वर्तमान उपयोगिता को भविष्य के एक रुपये की उपयोगिता से अधिक समझता है। इसलिए जब तक उसको यह निश्चय न हो कि एक रुपये की वर्तमान उपयोगिता और भविष्य उपयोगिता बराबर होगी, तब तक वह उस रुपये को वर्तमान आवश्यकताओं की तृप्ति में ही ख़र्च करेगा। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह वर्तमान सुख को भविष्य के सुख से अधिक पसन्द करता है। इसलिए एक रुपये की एक साल के बाद की उपयोगिता उसको इस वक्त शायद पन्द्रह आने की वर्तमान उपयोगिता के बराबर मालूम होती है। इस प्रकार से मनुष्य भावी मूल्य निश्चय करता है। भावी उपयोगिता पर कुछ बट्टा लगाया

जाता है। उपभोग भविष्य के लिये जितना अधिक स्थगित किया जायेगा उतनी ही उसकी उपयोगिता वर्तमानकाल में कम मालूम पड़ेगी और बट्टा बढ़ जायगा। इस बट्टे की दर भिन्न-भिन्न मनुष्यों को भिन्न-भिन्न समय में अलग-अलग होगी। मामूली तौर पर हम इस बट्टे की दर को माप सकते हैं। इसके लिए हमको दो बातें माननी पड़ेंगी। पहले तो यह कि मनुष्य की आर्थिक अवस्था भविष्य मे वैसी ही रहेगी और दूसरी यह कि द्रव्य से भविष्य में ख़रीदे गये पदार्थों की उपयोगिता से उसको समान तृप्ति प्राप्त होगी। इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए अगर कोई मनुष्य इस साल ५०) रु० इस ख़याल से बचाये कि उसको एक साल बाद ५६) रु० मिले, तो वह भविष्य की उपयोगिता पर १२ प्रतिशत प्रति वर्ष बट्टा लगाता है।

जिस दर से मनुष्य भविष्य की उपयोगिता पर बट्टा लगाते हैं उससे उनकी भविष्य के लिए धन बचाने की इच्छा तो मालूम होती है। परन्तु इसके साथ-ही-साथ उससे मनुष्य के उन वस्तुओं के ख़रीदने की इच्छा भी मालूम होती है जिनसे धीरे-धीरे बहुत समय तक तृप्ति मिलती है। जो मनुष्य धैर्य-हीन और ज़ल्दबाज़ होता है वह ऐसी वस्तुओं में ख़र्च करता है जिनसे शीघ्र ही अतिशय तृप्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसा मनुष्य चटकीली, भड़कीली और शीघ्र नाशवान् पदार्थों को अधिक पसन्द करता है। ५०) रु० में साइकिल ख़रीदने के बदले वह ५०) रु० की एक पार्टी के

ख़र्च को अधिक पसन्द करेगा। ऐसे मनुष्यों के लिए भी हम कह सकते हैं कि ये लोग भविष्य के उपभोग का मूल्य बहुत कम समझते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को भविष्य की दुर्घटनाओं के लिए सदा अपने को तैयार रखना चाहिये। न मालूम कब बुरे दिन आ जायँ। यहाँ तक कि अगर मनुष्य को यह निश्चय हो कि भविष्य में उसको बचत से कम तृप्ति मिलेगी, तब भी उसको कुछ-न-कुछ भविष्य के लिए अवश्य बचाना चाहिए। यह बचत गढा खोद कर दबा नहीं देनी चाहिये और न उसके आभूषण बनवा लेना चाहिये, बल्कि ऐसे व्यवसायों में लगानी चाहिये जिससे कुछ और आमदनी हो। पूँजी लगाने का सवाल उतना ही मुश्किल है, जितना पूँजी बचाना।

अपनी बचत के सुरक्षित रखने का सबसे सरल तरीक़ा यह है कि वह डाकघर या किसी विश्वसनीय बैंक के सेविंग बैंक के हिसाब में जमा कर दिया जाय। इससे कुछ सूद भी मिल जाता है और आवश्यकतानुसार रुपया आसानी से वापस भी मिल जाता है। जहाँ तक हो सके बचत ऐसे व्यवसायों में लगानी चाहिये जिनमें मूलधन सुरक्षित रहे, आमदनी निश्चित हो और अच्छी हो और ज़रूरत पडने पर शीघ्र ही व्यवसाय से पूँजी वापिस मिलने की सहूलियत हो जैसे सरकारी ऋण पत्र, स्टाक अथवा शेयर इत्यादि। वे इस तरह के होने चाहिए जो बाजार में शीघ्र अच्छी कीमत पर बेचे जा सके।

ज़मीन ख़रीदना या मकान बनवाना भी बचत का एक अच्छा

उपयोग है। इससे पूँजी भी सुरक्षित रहती है और आमदनी भी अच्छी होती है। सब मे बडी बात यह है कि जन-संख्या की वृद्धि से साधारणतः ज़मीन की क़ीमत बढ़ती रहती है।

वृद्धावस्था के समय तथा अपने आश्रितों की सहायता के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ तक हो सके अपने जीवन का बीमा भी करा लेना चाहिए। इसकी किश्त समय पर चुकाने के लिए अपने ख़र्च से बचत भी बराबर होती जायगी और इस बचत का उपयोग भी उचित रीति से होगा। बीमा की अवधि समाप्त होने पर वृद्धावस्था में बीमा कराने वालों का अथवा बीच मे मृत्यु हो जाने पर आश्रितों को बीमा की निर्धारित रक़म मिल जायगी, जिससे उनका एक बड़ा आर्थिक संकट दूर हो जायगा।

भारतवर्ष के अधिकाश निवासी अपना पेट ही बड़ी मुश्किल से भर सकते हैं, उनसे बचत की क्या उम्मेद की जा सकती है। पश्चिमी अर्थशास्त्रज्ञों का ख़याल है कि भारतवर्ष में बहुत सा धन गड़ा हुआ है। शायद प्राचीन काल में यह बात सच रही हो। परन्तु अब इस प्रकार के धन का परिणाम बहुत अधिक नहीं है। हाँ, आभूषणों के रूप में बचत का बहुत सा रुपया अवश्य लगा हुआ है। इस धन का उचित उपयोग होना बहुत आवश्यक है। जब भारत में प्रति मनुष्य इतनी कम आमदनी है जिससे मनुष्य का निर्वाह मात्र मुश्किल से हो पाता है तो यह बचत और पूँजी किस तरह से बढ़ सकती है। पूँजी बढ़ाने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रति मनुष्य आमदनी में वृद्धि हो। इसके

लिए यह आवश्यक है कि देश में वस्तुओं की उत्पत्ति बढ़ाई जाय और आय का वितरण इस भांति हो जिससे सब को उचित हिस्सा मिले।

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जिसे अन्न और वस्त्र का कष्ट नहीं है अपनी आमदनी के कम-से-कम दसवें हिस्से की प्रति वर्ष बचत करने का पूर्ण रूप से प्रयत्न करना चाहिए। इस बचत के कारण वह संकट के समय कर्ज़दार होने से बच जायगा और वह हमेशा सुखी रहेगा।

सत्रहवाँ अध्याय

सहकारी उपभोग समितियाँ

आजकल सब लोग उपभोग की अधिकांश वस्तुओं को मोल लेते हैं। उपभोक्ता इन वस्तुओं को एकदम उन वस्तुओं के उत्पादकों से नहीं ख़रीदता है। वह इन वस्तुओं को व्यापारियों से, दूकानदारों से, फेरीवालों से ख़रीदता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसको वस्तुएँ अधिक कीमत पर मिलती हैं; क्योंकि उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच मे जितने भी दलाल होते हैं, वे कुछ-न-कुछ मुनाफा अवश्य लेते हैं, और यह सब मुनाफ़ा उस वस्तु की क़ीमत के रूप में उपभोक्ताओं को देना पड़ता है। इससे उपभोक्ताओं की हानि होती है। जितना रुपया उनको दलालों को देना पड़ता है, उतना रुपया यदि वे बचाकर अपने ऊपर ख़र्च कर सकें तो उनका रहन-सहन सुधर सकता है। इन दलालों की वजह से उपभोक्ता लोग उत्पादकों से बिलकुल अलग से हो गये हैं। उनसे कुछ सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया है। उत्पादक बहुधा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को अच्छी तरह नहीं जानता और कभी-कभी वह बाज़ार को ऐसी

वस्तुओं से भर देता है जिनकी आवश्यकता बहुत कम होती है। इससे बहुत बर्बादी भी होती है।

आजकल चीज़ों में बहुत मिलावट रहती है। असली चीज़ पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। ख़ासकर झूठे विज्ञापनों द्वारा बहुत से लोग ठगे जाते हैं। उपभोक्ता एक वस्तु जो कुछ समझ कर ख़रीदता है, वह वस्तु उपभोग करने पर दूसरी ही मालूम होती है। इन सब बातों से उपभोक्ता को बहुत नुक़सान उठाना पड़ता है और उसके रहन सहन पर भी बुरा असर पड़ता है।

उपर्युक्त अधिकाश बुराइयाँ सहकारी-उपभोग समितियों द्वारा दूर की जा सकती हैं। बहुत से उपभोक्ता—जिनमें कुछ साहश्य हो, अर्थात् एक शहर के हों, एक गाँव के हो, अथवा एक पेशे के हों, इत्यादि—आपस में एकता करके अपनी एक सहयोग-समिति बना लेते हैं। समिति के सदस्य कुछ पूँजी जमा करके एक कोष बना लेते हैं। इस पूँजी से वे अपनी साख बढ़ा लेते हैं और उन कामों को करने में समर्थ हो जाते हैं जिनको एक अकेला आदमी कभी भी नहीं कर सकता।

एकता में बहुत बल है। एकता से उत्पत्ति, उपभोग इत्यादि प्रत्येक कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। इस अध्याय मे हम केवल इस बात पर विचार करते हैं कि एकता और सहकारिता का उपभोग और रहन-सहन पर क्या असर पड़ता है।

जब कुछ उपभोक्ता लोग आपस मे मिलकर एक सहकारी

उपभोग-समिति बना लेते हैं तो वे लोग इस बात का निश्चय कर लेते हैं कि वे अपने उपभोग की सभी वस्तुएँ इस समिति के द्वारा ही ख़रीदेंगे। इससे उनको बहुत से लाभ होते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता है।

लाभ पर विचार करने के पहले यह बतला देना आवश्यक है कि ये सहकारी-उपभोग-समितियाँ किस प्रकार उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। जब समिति स्थापित हो जाती है तो उसके सदस्य आपस में किसी योग्य पढ़े-लिखे सदस्य को अपना मन्त्री निर्वाचित करते हैं। समिति द्वारा एक सभापति, ख़ज़ाञ्ची और थोड़े से सचालक भी चुने जाते हैं। ये सब लोग मिल कर समिति का काम चलाते हैं।

इस समिति का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं से अपने को परिचित रखे और उन आवश्यकताओं को तृप्त करने की विविध वस्तुएँ सीधे उत्पादकों से सस्ते दाम पर प्राप्त करके उपभोक्ताओं को पहुँचावे। चूंकि समिति के पास सदस्यों से शेयर के रूप में ली हुई पूँजी का एक स्थायी कोष रहता है और इसके बल से इसकी साख बढ़ी रहती है, और चूँकि समिति प्रत्येक वस्तु को अधिक परिमाण में ख़रीदती है,

जाता है, वस्तुतः वह उपभोक्ताओं के पास ही रह जाता है।

चूँकि समिति के कार्य-कर्ता योग्य व्यक्ति ही चुने जाते हैं इसलिये ये लोग इस बात को जानने में अधिक समर्थ होते हैं कि कौन-सी वस्तु कहाँ अच्छी और सस्ती मिल सकती है। साधारण मनुष्यों से इन लोगों को वस्तु की अधिक पहिचान होती है। इसलिए इन लोगों के द्वारा ख़रीदने पर मिलावट की वस्तुओं के धोखे में आने की सम्भावना बहुत कम रहती है।

यह समिति दो तरीक़ों से उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरी कर सकती है। पहिला तरीक़ा यह है कि समिति किसी काल विशेष के लिए लोगों की आवश्यकताओं की वस्तुओं की सूची बनाती है, और फिर उन वस्तुओं को मँगाकर उन लोगों में बाँट देती है। दूसरा तरीका यह है कि समिति लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार विविध वस्तुएँ गोदाम में इकट्ठा कर लेती हैं। जिस किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता हो, वह इस दूकान से ख़रीद लेता है।

पहला तरीक़ा उन स्थानों में अधिक उपयोगी होता है जहा के लोगों की आवश्यकताएँ कम हों और एक-सी हों, और जहा एक स्थायी दूकान रखने से कुछ फायदा न हो। देहात के लोग बहुधा अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को स्वय तैयार कर लेते हैं। उन लोगों की आवश्यकताएँ भी क़रीब-क़रीब एक-सी होती हैं। वहा विविध वस्तुओं की माँग भी हमेशा इतनी नहीं रहती है कि कोई सहकारी दूकान साल भर लाभ-पूर्वक चल सके।

इसलिए ऐसे स्थानों मे पहला तरीक़ा ही अधिक उपयोगी मालूम होता है।

दूसरा तरीक़ा शहर के लिए अधिक उपयोगी होता है। शहर में लोग इधर-उधर फैले रहते हैं, उनकी आवश्यकताएँ भी भिन्न-भिन्न और अधिक होती हैं। इसलिए यहाँ पर सहकारी दुकान खोलना ही ठीक मालूम देता है। इसके अलावा शहर के लोगों का मिजाज इस तरह का होता है कि अगर समिति बार-बार उनसे उनकी आवश्यकता की वस्तुओं के बारे में पूछे तो वे बहुत चिड़-चिड़े हो जाते हैं। इसलिए अच्छा यही है कि उन लोगो की रुचि और आवश्यकताओ के योग्य वस्तुओं की दुकान स्थापित कर दी जाय।

सहकारी-उपभोग समिति की साख बहुत बड़ी होती है, इसलिए किसी समय अगर समिति के पास धन की कमी भी पड़ जाय, तो वह वस्तुओं को उधार भी ख़रीद सकती है। इसके अलावा वह सहकारी बैंक महाजनों से, अथवा अन्य बैंकों से आसानी से कम सूद पर रुपया उधार ले सकती है। इससे समिति का कार्य धन के बिना रुकने नहीं पाता।

उपभोक्ताओं को उपभोग-समिति से बहुत लाभ होते हैं। सबसे पहले उनके समय की बचत होती है। अगर समिति की दुकान न हो, तो प्रत्येक उपभोक्ता को बाजार जाकर अपनी आवश्यकताओं की वस्तु के लिए इधर-उधर भटकना पड़े। समिति के द्वारा उनको

घर बैठे ही सब वस्तुएँ मिल सकती हैं। बाज़ार में जाकर एक साधारण मनुष्य बहुधा धोखा खा जाता है। वह असली और मिलावट के माल की ठीक पहचान नहीं कर सकता। उसको किसी वस्तु की बाज़ार दर ठीक ठीक मालूम नहीं होती। कभी-कभी दुकानदारों के बहकाने मे आकर या विज्ञापनों से धोखा खाकर वह ऐसी वस्तुओं को ख़रीद लेता है जिनकी उसको आवश्यकता नहीं होती। समिति के द्वारा ख़रीदने से वह इन धोखों से बचा रहता है। इसके अलावा साधारण उपभोक्ता बहुधा कम परिमाण में किसी वस्तु को ख़रीदता है। इसलिए वह छोटे-छोटे दुकानदारों या फेरीवालों से ख़रीदता है इसका नतीजा यह होता है कि उसको अधिक क़ीमत देनी पडती है। समिति के द्वारा ख़रीदने से उसको क़ीमत कम देनी पडती है। अगर समिति उतनी ही क़ीमत ले तो भी वह मुनाफ़ा, जो समिति को मिलता है, वास्तव में अन्त मे उपभोक्ताओं को ही मिलता है।

भारतवर्ष में इन सहकारी-उपभोग-समितियों की बहुत ही कमी है। सारे भारतवर्ष में, देहात और शहरों में दस बारह हज़ार से अधिक ऐसी समितियाँ नहीं हैं। इन समितियों के पास पूँजी भी बहुत कम है। जो कुछ समितियाँ हैं भी, उनका काम भी बहुत ढीला चल रहा है। इसका एक ख़ास कारण यह है कि यहाँ के अधिकाश लोगो में अभी ऐसी जागृति नहीं हुई है जिससे ये लोग सहकारिता तथा एकता का महत्व पूर्ण रूप से समझ सकें। उनको

अभी इस बात का विश्वास नहीं हुआ है कि यह समिति उनकी है, उनके ही लिए है, और इसलिए समिति का नफा-नुकसान उनका ही नफ़ा-नुकसान है। बहुत से लोगों का यह ख़याल है कि यह समिति सरकारी है, इसलिए अगर समिति के प्रति सच्चा व्यवहार न भी रखें तो उनका कुछ भी न बिगड़ेगा। जो कुछ नुकसान होगा वह सरकार का होगा। ऐसे विचारों के प्रभाव से वे लोग समिति के साथ दग़ा करते हैं और अपने पैरों में खुद कुल्हाड़ी मारते हैं।

भारत में सहकारी समितियों से लाभ होने की तभी सम्भावना हो सकती है, जब भारतवासियों में शिक्षा इत्यादि के प्रभाव से जागृति और उत्साह उत्पन्न हो। इसके बिना समिति की बुनियाद कच्ची रहेगी और फल वही होगा जो आज कल देखने में आता है। कोई कार्य सफल तभी हो सकता है जब कार्यकर्ताओं में जोश और उत्साह हो। बाहरी दबाव से जो काम किया जाता है उसमें बहुधा उन्नति कम होती है। भारतवर्ष में ये समितियाँ अधिकांश सरकारी कर्मचारियों के द्वारा बनी हैं न कि जनता के उत्साह से। जनता

उपभोग-समितियों को इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि उनके मैनेजर अथवा मन्त्री इत्यादि सुशिक्षित तथा सुयोग्य हों। वस्तुएँ बाज़ार के दर पर और नक़द बेचने की कोशिश करनी चाहिए। बाज़ार के दर पर बेचने से यह लाभ होता है कि समिति के पास मुनाफे से एक अच्छा कोष बन जाता है और समिति की साख और कार्य-शक्ति अधिक दृढ़ हो जाती है। उपभोक्ताओं को चाहिए कि नियत समय पर समिति का मूल्य चुका दें, अन्यथा समिति के सचालन में गड़बड़ी होने की सम्भावना रहती है।

अठारहवाँ अध्याय

दान-धर्म

पिछले कई अध्यायों में बतलाया जा चुका है कि मनुष्य के रहन-सहन को ऊँचा करने के लिये साधारणतः यह आवश्यक है कि उसकी आमदनी में वृद्धि हो। इस अध्याय में इस बात का विवेचन किया जाता है कि गरीब लोगों की आमदनी में उचित दान-धर्म द्वारा किस प्रकार वृद्धि हो सकती है।

धनी लोग अपने रहन-सहन को वास्तविक बना ही सकते हैं। इसलिए उनकी आमदनी बढ़ाने का सवाल यहाँ पर उपस्थित ही नहीं होता। यहाँ उन लोगों की आमदनी और रहन-सहन पर विचार किया जाता है जिनकी आमदनी इतनी नहीं है जिससे वे अपना रहन-सहन वास्तविक बना सके।

किसी भी मुल्क की राष्ट्रीय-आय किसी एक ख़ास समय पर नियमित होती है। इसलिए अगर ग़रीबों की आमदनी में वृद्धि की जाय, तो उसका अधिकाश भाग किसी न किसी रूप मे धनी लोगों से आना चाहिये। अब यह देखना है कि धनी लोग किस-किस रूप मे ग़रीबों की आमदनी तथा उसके रहन-सहन की उन्नति कर सकते हैं, और इसका असर उन पर, ग़रीबों पर तथा देश पर कैसा

पड़ता है।

कुछ लोगों का यह ख़याल है कि अगर धनी लोगों से धन लेकर ग़रीबों को किसी भी रूप में दिया जाय तो उससे देश की हानि होगी। इन लोगों का कहना है कि अगर किसी साल एक करोड़ रुपया धनी लोगों से लेकर ग़रीबों को दे दिया जाय तो धनी लोगों की एक करोड़ रुपये से ख़रीदी जाने वाले वस्तुओं की माँग कम हो जायगी। इस तरह उत्पत्ति कम हो जायगी और बहुत से ग़रीब लोग बेरोज़गार हो जायँगे। इससे देश की बहुत क्षति होगी। लेकिन ये लोग एक ही पहलू से विचार करते हैं। दूसरी तरफ़ से देखने से मालूम होगा कि यह एक करोड़ रुपया जो ग़रीबों के पास जायगा वह भी उपभोग अथवा उत्पत्ति की वस्तुओं को खरीदने में ख़र्च किया जायगा। इससे ग़रीब लोगों की माँग की वृद्धि होगी। हाँ, इतना अवश्य होगा कि अमीर लोगों की कुछ ऐशो-आराम की चीज़ों के बदले कुछ जीवनोपयोगी वस्तुओं की पैदायश बढ़ जावेगी। इससे देश का अधिक ही कल्याण होगा।

ग़रीबों की आमदनी में वृद्धि न करने का दूसरा कारण यह दिया जाता है कि अगर इन लोगों की आमदनी बढ़ा दी जाय तो ये लोग काम से जी चुराने लगेंगे और इससे उत्पत्ति कम होगी और राष्ट्रीय आय भी कम हो जावेगी। इस कारण में कुछ सचाई अवश्य है लेकिन यह बात नहीं कि केवल इसी कारण से ग़रीबों की आमदनी में वृद्धि न की जाय। हाँ, यह बात

आवश्यक है कि ग़रीबों की आमदनी इस प्रकार से बढाई जाय, और इस प्रकार के प्रबन्ध किये जायँ कि ग़रीब लोग आलसी होने के बदले अधिक कार्य कुशल बनने और अपनी आमदनी अधिक बढ़ाने की कोशिश करें। उन लोगों को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे इस बात को अच्छी तरह से समझ जायँ कि आमदनी की वृद्धि का सदुपयोग करने से उनको कितना लाभ होगा, और उसका दुरुपयोग करने से कितना भयङ्कर परिणाम होगा। इसलिए यह बात निश्चित है कि अगर सतर्कता से ग़रीबों की आमदनी मे वृद्धि की जाय तो देश का उपकार ही होगा।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि धनी लोगों से जो धन लेकर ग़रीबों को दिया जायगा, उसका अधिकाश उनकी बचत अथवा पूँजी में से आवेगा और ग़रीब लोग इस धन को उपभोग के पदार्थों में ख़र्च कर देंगे। इसलिए देश की पूँजी और उत्पत्ति भी कम होती जायगी। पहले तो इस बात का कोई पक्का सबूत नही है कि ग़रीबों को दिया जानेवाला धन बचत अथवा पूँजी में कमी करके आवेगा। यह बात भी मुमकिन है कि धनी लोग अपने ऐशो-आराम की कुछ वस्तुओं का उपभोग कम करके इस धन का एक हिस्सा ग़रीबों के लिए निकाल ले। दूसरी बात यह है कि यह धन जो ग़रीबों पर ख़र्च किया जावेगा, इससे भी भविष्य में देश के लिए पूँजी बन जायगी। बहुत से ग़रीब लोग कार्य-कुशल बन जायँगे, बहुत से बच्चे और नौजवान लोग जो आवारा फिरा करते हैं वे सुशिक्षित, साहसी और हृष्ट-पुष्ट बन जायँगे। क्या ये

देश की पूँजी नहीं है? इन सब बातों का कुल परिणाम यह होगा कि जितना धन ग़रीबों पर इस वक्त ख़र्च किया जायगा, कुछ सालों में वे इससे कई गुना अधिक फल देंगे।

ग़रीब लोगों की आमदनी कई रूप में बढ़ाई जा सकती है। यह बात आवश्यक नहीं है कि उनको धन के रूप में ही सहायता दी जाय। सरकार बहुत-सी वस्तुओं में कर लगा कर अथवा सहायता देकर इस प्रकार का प्रबन्ध कर सकती है कि धनी लोगों के उपभोग की वस्तुओं का मूल्य कुछ बढ़ जाय और गरीब लोगों के उपभोग की वस्तुओं का मूल्य घट जाय। इसके अलावा सरकार शिक्षालय, वाचनालय, औषधालय इत्यादि स्थान-स्थान पर स्थापित कर इन लोगों को बिना मूल्य इनका उपयोग करने की आज्ञा देकर देश का भला कर सकती है।

इसी प्रकार सरकार और पूँजीपति इस प्रकार का कोष स्थापित कर सकते हैं जिससे वे बेकार लोग, जो काम करना चाहते हैं और उनको काम नहीं मिलता तथा अपाहिज लोग भूखों न मरने पावें।

धनी लोग अनेक प्रकार से गरीब लोगों का उपकार कर सकते हैं। पहले तो वे गरीबों को धन दे सकते हैं। इसके अलावा वे उनकी भोजन, वस्त्र, इत्यादि आवश्यक पदार्थों से सहायता कर सकते हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह रिवाज बहुत प्रचलित था। पुत्रोत्पत्ति के समय, विवाह के समय और भी शुभ अवसरों

मे धनी लोग ब्राह्मणों को, निर्धन लोगों को धन, वस्त्र, इत्यादि दान दिया करते थे। जो कोई अच्छा पण्डित, कवि, गायक होते थे वे भी उचित रूप से पुरस्कृत किये जाते थे। भूकप, दुर्भिक्ष इत्यादि कष्टों के अवसरों पर अन्न-वस्त्र बाटे जाते थे। ऐसे कष्टों के अवसरों पर यज्ञ इत्यादि धार्मिक कर्म किये जाते थे और बहुत-सा धन लोगों में बाँटा जाता था।

आजकल इस प्रथा का लोप सा हो गया है। किसी-किसी धार्मिक स्थान या तीर्थ में सदावर्त का नाम सुनाई पड़ता है। आजकल के धनी लोग ऐसी बातों पर बहुत कम विश्वास करते हैं। जो लोग ग़रीब लोगों का धन ले लेकर धनी बनते हैं उनसे क्या यह उम्मेद की जा सकती है कि वे ग़रीबों को धन वापिस कर देंगे। अगर ऐसा ही होता तो वे उनसे धन लेते ही क्यों। हाँ, इस धन से ये लोग आलीशान भोज देते हैं, मोटरकार ख़रीदते हैं और गुल-छुर्रें उड़ाते हैं।

यहाँ पर यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि धनी लोग अपने धन को बिना कुछ सोचे-समझे ग़रीब लोगों में बाँट दें। इस तरह बाँटने से अनिष्ट होने की आशङ्का है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अगर बिना किसी अच्छे इन्तज़ाम और निरीक्षण के ग़रीब लोगों को धन दे दिया जाय तो सम्भव है कि वे लोग अपना समय आलस्य में बितावें। भारतवर्ष में भिखारियों की संख्या बहुत ही अधिक है। इनमें से अधिकांश, ऐसे लोग हैं

जो कार्य करके अपना निर्वाह कर सकते हैं। लेकिन इनकी माँग की आदत ऐसी ख़राब पड़ गई है कि ये लोग एक-दो दिन भूखे तक पड़े रहते हैं लेकिन काम कुछ नहीं करते। इसका कारण यह है कि इन लोगों को बिना कुछ सोचे-विचारे भिक्षा दे दी जाती है और इसका भयङ्कर परिणाम होता है। किसी प्रकार की भी सहायता करनी हो तो वह स्थान, काल, पात्र को देखकर करनी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता मे भी भगवान् ने कहा है कि उचित स्थान में, उचित समय में तथा सत्पात्र व्यक्ति के लिए जो दान दिया जाता है वह दान सात्विक कहलाता है। इसके विपरीत अनुचित स्थान मे, अनुचित समय में, अपात्र व्यक्तियों को जो दान दिया जाता है वह तामस-दान कहलाता है।

सहायता इस प्रकार से दी जानी चाहिये कि उसका परिणाम शुभ हो। अगर अकाल के समय अथवा और किसी कष्ट के समय ज़मींदार लोग लगान मुआफ कर दे या कम कर दे तो यह उचित काल की सहायता होगी। इसी तरह यदि कोई धनी मनुष्य ऐसे स्थान मे, जहाँ पानी की बहुत कमी है एक कुआँ खुदवा दे, तो वह बहुत अधिक उपकार करेगा बनिस्बत इसके कि वह एक नदी के किनारे कुआँ खुदवाये। इसी प्रकार दान या सहायता देते समय इस बात का विचार कर लेना चाहिए कि दान या सहायता कैसे मनुष्य को दी जा रही है।

धनी लोगों को चाहिये कि वे इस प्रकार के काम-धन्धों का

आयोजन करें, जिनसे देश का अधिकतम कल्याण हो। यह बात तो मानी हुई है कि द्रव्य देकर ग़रीबों की सहायता करने से देश का अधिक कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए इन लोगों को द्रव्य न देकर उस द्रव्य से इस प्रकार के काम करने चाहिये जिसके अन्त में (भीतर ही भीतर) ग़रीब लोगों की सहायता हो जाय। अगर स्थान-स्थान पर इस प्रकार की पाठशालाएँ खोल दी जायँ जहाँ कि ग़रीब लोगों के बच्चे निःशुल्क पढ़ सके तो इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य की जनता सुशिक्षित और कार्य-कुशल होगी। इसी प्रकार धनी लोगों को चाहिये कि जगह-जगह पुस्तकालय खुलवा दे। जिस जगह पानी की कमी हो वहाँ कुवे खुदवायें अथवा प्याऊ का इन्तज़ाम कर दे। मुसाफिरों के लिए धर्मशालाएँ बनवा दे। इसी प्रकार के कितने ही ऐसे कार्य हैं जिनमें रुपया ख़र्च करने का अन्त में वही परिणाम होता है, जो ग़रीबो को धन देकर सहायता करने से हो सकता। बल्कि कभी-कभी उससे भी अच्छा परिणाम होता है।

इस तरह से जो धन धनी लोगों के पास से गरीब लोगों के पास पहुँचेगा उसका कुल परिणाम यह होगा कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जायगी। धनी लोग इस धन के अधिकाँश भाग को विलासिता तथा आराम की वस्तुओं के ख़रीदने में ख़र्च कर देते हैं। लेकिन जब यह धन शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि के रूप में ग़रीब जनता के पास पहुँचता है तो यह निश्चय है कि भविष्य की जनता इस अवस्था में पहुँच जायगी कि वह अपनी टाँगों पर खुद खड़ी

हो सकेगी, और देश में सुख, शान्ति और समृद्धि का विकाश होने लगेगा। देश के उत्थान के लिए प्रत्येक धनी व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी आमदनी का कम-से-कम दसवाँ भाग दान देने के लिए अलग रखता जाय और उचित समय पर उसका उचित रीति से उपयोग करे। इससे देश को बहुत लाभ होगा।

उन्नीसवाँ अध्याय

सदुपभोग और दुरुपभोग

इस अध्याय मे यह बतलाने का प्रयत्न किया जाता है कि वस्तुओं का सदुपभोग और दुरुपभोग किस प्रकार होता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है किसी वस्तु अथवा सेवा का यथार्थ में तभी उपयोग होता है जब कि उससे सन्तोष और तृप्ति प्राप्त हो। सन्तोष और तृप्ति मानसिक हैं। सब मनुष्यों को एक ही प्रकार की वस्तुओं के उपभोग से बराबर तृप्ति या सन्तोष नही मिलता। लेकिन इस बात मे कुछ भी सन्देह नहीं है कि सन्तोष का सभी मनुष्यों के जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध है। सन्तोष जीवन के मुख्य ध्येयों में से एक ध्येय समझा जाता है और प्रत्येक मनुष्यों इसको प्राप्त करना चाहता है। जिस देश के लोग सन्तुष्ट रहते हैं वह देश हमेशा शक्तिवान् और समृद्धिवान् रहता है।

उपभोग और सन्तोष का जो सम्बन्ध है उसका वर्णन तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। उसमे यह भी बतलाया जा चुका है कि आवश्यकताओं को अपने वश मे करने से क्या-क्या लाभ होते हैं।

उपभोग की वस्तुओं में से कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका असर उपभोक्ता पर बहुत अच्छा होता है। ये वे वस्तुएँ हैं जो मनुष्य के जीवन की रक्षा करती हैं और उसको कार्य करने की शक्ति और निपुणता प्रदान करती है। इन वस्तुओं का विवेचन "वास्तविक रहन-सहन का दर्जा" वाले अध्याय में हो चुका है। इन वस्तुओं का उपभोग सदुपभोग कहा जाता है; क्योंकि इन वस्तुओं के उपभोग का परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है। सदुपभोग की वस्तुएँ साधारणतः सभी मनुष्यों के लिए समान होती हैं। जल-वायु तथा कुछ अन्य परिस्थितियों से इसमें थोड़ा सा अन्तर हो सकता है।

बहुत सी वस्तुएँ जिनका उपभोग किया जाता है ऐसी हैं जो क्षणिक सन्तोषदायक होती हैं परन्तु उनका परिणाम बहुत बुरा होता है। ऐसी वस्तुओं के उपभोग को दुरुपभोग कहा जाता है। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण हैं शराब, अफीम, चरस इत्यादि, नशीली वस्तुओं का सेवन, तम्बाकू, सिगरेट पीना, जुआ खेलना, विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करना, इत्यादि। और भी कुछ ऐसे व्यसनों में लोग फसे रहते हैं जिनसे वे अपने द्रव्य का दुरुपयोग करते हैं। दुरुपभोग मनुष्य के जीवन का काल है। इससे मनुष्य का आचरण ख़राब हो जाता है, उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है और उसकी कार्य-कुशलता क्षीण होती जाती है। साराश यह है कि दुरुपभोग से मनुष्य की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है।

भारतवर्ष में दुरुपभोग भयानक रूप मे फैल गया है। एक समय वह था जब यहाँ के निवासियों का आदर्श यह था कि आवश्यकताओं को परिमित रखा जाय, जीवन सादगी के साथ बिताया जाय, लेकिन ध्येय हमेशा ऊँचा रहे। उस समय लोग थोड़े मे सन्तोष करते थे। तब देश में सुख, शान्ति और समृद्धि का राज्य था। आजकल पश्चिमी सभ्यता के संसर्ग से यहाँ के लोगों ने अपने को इच्छाओं का दास बना लिया है। इन लोगों को यह विश्वास हो गया है कि जितनी अधिक उनकी इच्छाएँ होंगी, उतना ही अधिक वे लोग सभ्य कहलावेंगे। प्राचीन काल के ऊँचे विचार और आदर्श सब लुप्त हो चले हैं। निर्धन, धनी, राजा, रङ्क सब को धन की हाय-हाय पड़ी हुई है। देश में सर्वत्र अशान्ति और असन्तुष्टता फैली हुई है।

प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी आवश्यकताओं का इस प्रकार से नियमन करे, जिससे उसका, समाज का और देश का भी कल्याण हो। यह तभी हो सकता है जब कि लोग दुरुपभोग को छोड़ दें और सदुपभोग को ग्रहण करें।

जो लोग दुरुपभोग के अभ्यस्त हो चुके हैं वे कहते हैं कि अब उनकी आदते छूट नहीं सकती। लेकिन यह उनकी सरासर भूल है। सच्चे दिल से प्रयत्न करने से कुछ भी असम्भव नहीं है। हाँ, प्रारम्भ मे अवश्य ही कष्ट मालूम होगा, लेकिन यह कष्ट बहुत काल तक नहीं होगा। जिस समय दुर्व्यसन मनुष्य से छूट जायेगा उसी समय उसको बहुत शान्ति और सन्तोष प्राप्त
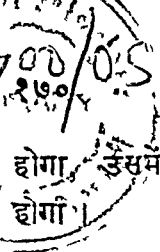
होगा, उसमें उत्साह और स्फूर्ति बढ़ेगी और उसका जीवन सुखी होगा।

यह बात ध्यान में रखने के योग्य है कि भारतवर्ष का कल्याण आँखे मूँदकर पश्चिमी सभ्यता की नकल करने से नहीं हो सकता। भारतवर्ष का धर्म, आदर्श, सभ्यता सभी पश्चिमीय देशों से भिन्न रही है। सभ्यता की उन्नति यहाँ इच्छाओं की वृद्धि से नहीं मापी जाती थी। यहाँ सभ्यता की उन्नति का मार्ग ही दूसरा है। यह मार्ग है शारीरिक आवश्यकताओं का नियमन करना, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को अधिक महत्व देना। इस मार्ग पर चलने वाला प्राचीन काल का भारतवर्ष असभ्य नहीं कहलाता था।

यहाँ पर यह कहने का मतलब नहीं है कि मनुष्य सब काम-धन्धों को छोड़ कर सन्यास ग्रहण कर ले, और अपने शरीर को यातना दे। कोई भी मनुष्य अपने को कष्ट पहुंचाना नहीं चाहता। सब चाहते हैं कि उनको अधिकतम सुख मिले और दुःख न्यूनतम हो। अब यह देखना है कि आवश्यकताओं के दास बनने तथा दुरुपभोग से अधिक सुख होता है अथवा आवश्यकताओं के नियमन तथा सदुपभोग से। अगर मनुष्य अपने में किसी ऐसी वस्तु के उपभोग की इच्छा उत्पन्न कर ले, जिसको वह तृप्ति न कर सके तो उसको इससे अधिक दुःख होगा। उस इच्छा को उत्पन्न ही न होने देने में उसको उतना दुःख न होगा। स्मरण रहे कि यह बात

केवल उन इच्छाओं के लिए कही जा रही है जो कि स्वाभाविक नहीं है, परन्तु जिनको मनुष्य संसर्ग अथवा किसी और प्रकार से उत्पन्न कर लेता है। आवश्यकताएँ तो असीम होती हैं, और बढ़ती जाती हैं, इसलिए कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता है कि यह मेरी अन्तिम आवश्यकता है और इसके बाद मुझको और कोई आवश्यकता नहीं होगी। अगर मनुष्य अपने को इच्छाओं के समुद्र मे बहा दे तो फिर उसको कष्ट ही अधिक मिलेगा। इससे अच्छा तो यही है कि मनुष्य मनोनिग्रह और इन्द्रियनिग्रह द्वारा अपनी आवश्यकताओं का नियमन करे।

जहाँ आवश्यकताओं का नियमन हुआ कि सदुपभोग शुरू हो जाता है। सदुपभोग के साथ-साथ उसके अनुगामी सुख, सन्तोष, शान्ति और समृद्धि स्वयं ही आ उपस्थित होते हैं।

अगर भारतवर्ष के लोग निरर्थक की हाय-हाय को छोड़कर, अपनी इच्छाओं को अपने वश मे कर के, दुरुपभोग को छोड़ कर सदुपभोग ग्रहण करे, तो जो अशान्ति, असन्तुष्टता देश में फैली हुई है उसका बहुत कुछ अंश में आसानी से निवारण हो जाय।

हिन्दू धर्मशास्त्र में लिखा है कि जो द्रव्य अधर्म या बेईमानी से प्राप्त किया जाता है उसका सदुपभोग नहीं हो सकता। वह दुरुपभोग द्वारा ही प्रायः नष्ट हो जाता है। इससे मनुष्य की ख़र्च करने की आदत भी बिगड़ जाती है। अपनी आदत के बिगड़ने से अन्त में मनुष्य बरबाद हो जाता है। इसलिए प्रत्येक

व्यक्ति को धर्म-पूर्वक इमानदारी से ही द्रव्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को इमानदारी से थोड़ा-बहुत जो कुछ द्रव्य मिल जाय उससे सन्तोष कर लेना चाहिए और अपनी इच्छाओं को वश में करके उस द्रव्य का सदुपभोग करना चाहिए। इससे उसे वह शान्ति और सुख प्राप्त होगा जो धनवान व्यक्तियों को भी दुर्लभ है।

भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र-परिषद्

(सन् १९२३ ई० में संस्थापित)

सभापति—

श्रीयुत् पंडित दयाशङ्कर दुबे, एम्० ए०, एल-एल० बी० अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग।

मंत्री—

(१) श्रीयुत् जयदेवप्रसाद जी गुप्त, एम्० ए०, बी० कॉम, एस० ए० कालेज, चन्दौसी।

(२) पंडित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी, दारागंज, प्रयाग।

इस परिषद् का उद्देश्य है जनता में हिन्दी द्वारा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाना और उसका साहित्य बढ़ाना। कोई भी सज्जन अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखकर इस परिषद् का सदस्य हो सकता है। प्रत्येक सदस्य को परिषद् द्वारा प्रकाशित या सम्पादिक पुस्तकें पौने मूल्य पर दी जाती हैं।

परिषद् की सम्पादन-समिति द्वारा सम्पादित होकर निम्नलिखित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं:—

(१) भारतीय अर्थशास्त्र (भारतीय ग्रंथमाला, बृन्दावन) २||)
(२) भारतीय राजस्व (भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दावन) |||=)
(३) विदेशी विनिमय (गंगा-ग्रंथाकार, लखनऊ) १||)
(४) अर्थशास्त्र शब्दावली (भारतीय ग्रथमाला बृन्दावन) १)
(५) कौटिल्य के आर्थिक विचार (,, ,,) |||=)
(६) सम्पत्ति का उपभोग (अर्थशास्त्र ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग) १|)
(७) भारतीय बैंकिंग (रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग) १||)

हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य

(भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन) ॥)

(९) धन की उत्पत्ति (लाला रामनारायण लाल, प्रयाग) १॥)

(१०) अर्थशास्त्र की रूप रेखा (साहित्य निकेतन, दारागंज, प्रयाग) ६)

(११) सरल अर्थशास्त्र (लाला रामनारायन लाल प्रयाग) ३)

(१२) ग्राम्य अर्थशास्त्र ,, ,, १॥)

(१३) भारत का आर्थिक भूगोल ,, १॥)

(१४) ग्रामसुधार (कृषि कार्यालय, जौनपुर) १)

(१५) सरल राजस्व (अर्थशास्त्र ग्रथावली दारागंज, प्रयाग) १)

हिन्दी मे अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य की कितनी कमी है, यह किसी साहित्य-प्रेमी सज्जन से छिपा नहीं है। देश के उत्थान के लिए इस साहित्य की शीघ्र वृद्धि होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक देश-प्रेमी तथा हिन्दी-प्रेमी सज्जन से हमारी प्रार्थना है कि वह अर्थशास्त्र की पुस्तकों के प्रचार करने में हम लोगों को सहायता देने की कृपा करे। जिन महाशयों ने इस विषय पर कोई लेख या पुस्तक लिखी हो तो उसे सभापति के पास भेज दें। पुस्तक परिषद् द्वारा स्वीकृत होने पर सम्पादन समिति द्वारा बिना मूल्य सम्पादित की जाती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण परिषद् अभी तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं कर पायी है, परन्तु वह प्रत्येक लेख या पुस्तक को सुयोग्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कराने का पूर्ण प्रयत्न करती है। जो सज्जन अर्थशास्त्र-सम्बन्धी किसी भी विषय पर लेख या पुस्तक लिखने मे किसी प्रकार की सहायता चाहते हों, वे नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करे।

श्री दुवेनिवास,
दारागञ्ज, प्रयाग

दयाशङ्कर दुवे, एम० ए०